OCTOBER TO DECEMBER 2008
YEAR 5TH : ISSUE 4TH

अक्टूबर से दिसम्बर 2008
वर्ष पंचम : अंक चतुर्थ

GYAN PRABHA

(Quarterly)

ज्ञान प्रभा

(त्रैमासिक) 11

सम्पादक मण्डल
सुरेश चन्द्र–प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. धर्मवीर सेठी–सम्पादक

Editorial Board
Suresh Chandra-Managing Editor
Dr. Dharam Vir Sethi-Editor

मूल्य : 30/ – रुपये वार्षिक मूल्य 100/ – रुपये

भारत विकास परिषद् प्रकाशन

इस अंक में.....

अपनी बात		4
वैदिक विनय		6
सेवा की विरासत	❑ किशोर अग्रवाल	7
स्वयंसेवी संस्थाएँ	❑ संतोष अग्रवाल	11
महादेवी वर्मा के निबन्धों में मौलिक चिन्तन का शाश्वत आदर्श	❑ डॉ. चम्पा श्रीवास्तव	15
समय, समाज और पत्र-पत्रिकाएँ	❑ संजय कुंदन	19
वृद्ध माता-पिता के साथ दुर्व्यवहार, उनकी उपेक्षा एवं शोषण		24
विद्याधर सूरजप्रसाद नायपालः दमित इतिहास का दास्तानगो	❑ देवेन्द्र इस्सर	28
क्या अब पाती नहीं आयेगी ?	❑ डॉ. अजित गुप्ता	35
जीवन प्रवाह (कविता)	❑ कृष्ण कुमार पाण्डेय	39
राष्ट्र धर्म	❑ डॉ. उषा खोसला	40
नए भारत का निर्माण	❑ मुकेश अंबानी	43
योग यात्रा	❑ डॉ. धर्मवीर सेठी	46
कोलेस्टरॉलः आपके दिल का दुश्मन या दोस्त।		52
मैं भाग्यशाली हूँ		56

अमर फल की यात्रा	❑ डॉ. कानन झींगन	57
स्वतन्त्र दास	❑ बने चन्दर मालू	59
अमेरिकी सब प्राइम संकट	❑ आर. के. श्रीवास्तव	64
Art of Living for a Super You	❑ S.K. Verma	69
Meaning Of Spirituality	❑ Suresh Chandra	75
Bharat, The Soil of Higher Human Values	❑ Rev. Yatiswari Ramakrishna Priya Amba	79
Do You Indulge In Self Pity	❑ Dr. P.V. Vaidyanathan	83
Science in Ancient India	❑ Pankaj S. Joshi	86
Best is the New Worst	❑ Susan Jacoby	91
Prayer Timetable		93
Developing Good Habits		94

दीपावली के शुभ अवसर पर उपहार हेतु नव वर्ष 2009-10 की डायरी व कलैण्डर उपलब्ध हैं

मूल्य
35 रु. मात्र

मूल्य
20 रु. मात्र

कम से कम ऑर्डर 25 कलैण्डर/ डायरी
ऑर्डर 'भारत विकास परिषद्' के नाम से डिमाण्ड ड्राफ्ट बना कर केन्द्रीय कार्यालय को शीघ्र भेजें। सप्लाई तुरन्त भेज दी जाएगी।

Calandars and Diaries are ready for dispatch. Kindly send your orders alongwith demand draft in favour or Bharat vikas Parishad.

अपनी बात

लेखन एक कला है और उस कला को जीवित एवं अक्षुण्ण बनाए रखने के अलग–अलग साधन हैं। पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएँ, रिपोर्ताज़, कहानियाँ, काव्य, संस्मरण आदि सभी उस कला में पारंगत होने के ही प्रतिफल होते हैं।

संस्कृत भाषा में एक छन्द है–

साहित्य संगीत कला विहीनः।
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः।।

अर्थात् साहित्य–पठन, संगीत श्रवण और विभिन्न कलाओं के प्रति जिसकी अभिरुचि नहीं होती उसे प्रायः पूंछ और सींग रहित पशु की संज्ञा दी जाती है। अभिप्राय यह कि उसमें अपने बौद्धिक स्तर को ऊँचा उठाने की इच्छा नगण्य होती है।

ऐसी भूख को शान्त करने के लिए ही भारत विकास परिषद् का गत पाँच वर्षों से एक प्रयास चल रहा है। 'ज्ञान प्रभा' के माध्यम से लेखकों की ऐसी रचनाएँ उभर कर आती हैं जिनका सम्बन्ध विभिन्न विषयों से होता है।

अध्यात्म की चर्चा करें तो 'वैदिक विनय' के रूप में प्रभु के स्तवन से प्रस्तुत अंक का प्रारम्भ हुआ है। हमारे शरीर का प्रत्येक अवयव स्वस्थ रहे और वह सम्भव होगा आध्यात्मिकता (Spirituality) का अर्थ समझने से; और जीवन जीने की कला (Art of Living) सीखने से। योगाभ्यास (योग यात्रा) उसमें 'सोने में सुहागा' का काम करेगा और यदि जीवनचर्या में तनाव के कारण कोलेस्ट्रोल बढ़ गया हो, तो उस का निदान भी यहाँ मिल

जाएगा। जब जीने की उमंग जगती है तो कभी–कभी समाज सेवा की भी इच्छा जागृत होने लगती है जिसे 'स्वयंसेवी संस्थाएँ' पूरा करती हैं।

लेखन–कला की बात चली तो कहना न होगा कि आज 'लेखनी' (Pen) का प्रयोग ही घटता जा रहा है, सब कुछ तो कम्प्यूटरीकृत जो हो गया है। इस पीड़ा से निज को अवगत कराएँ 'क्या अब पाती नहीं आएगी' और 'समय, समाज और पत्र–पत्रिकाएँ' द्वारा। राष्ट्रीय अस्मिता के लिए 'राष्ट्र धर्म' और 'Bharat-The Soil of Higher Values' लेख पढ़ने होंगे। जीवन की गतिशीलता के लिए काव्य–खण्ड 'जीवन प्रवाह' जोड़ा गया है। महान् लेखक और विचारक अपना जीवन कैसे जिए, पढ़िये 'महादेवी वर्मा' और 'वी.एस. नायपाल' सम्बन्धी लेखों में।

यात्रा का आनन्द लेना हो तो 'योग यात्रा' और 'अमर फल की यात्रा' में एक नया आयाम देखने को मिलेगा। साठ वर्षों की स्वतन्त्रता के बाद भी हम अभी दास हैं; कैसे? 'स्वतन्त्र दास' शीर्षक से जागरूक हो सकेंगे। शायद इसीलिए 'नए भारत के निर्माण' की आवश्यकता समझी गई। विज्ञान और अमेरिकी अर्थ संकट पर भी दृष्टिपात किया गया है। परिवारों के टूटते रिश्ते कभी–कभी भयावह हो जाते हैं; कैसे? इसी अंक में पढ़िए।

अच्छी बातें सीखना भी ज़रूरी है परन्तु सदा भाग्य के भरोसे मत रहिए और निज पर तरस (Pity) भी मत खाइए। ये कुछ ऐसी 'सीख' हैं जो लगती चाहे साधारण हों परन्तु हैं काम की। इन सब से आप, इस अंक में रूबरू होंगे।

विचारोत्तेजक लेख, जीवनी, यात्रावृत्त, काव्य, विज्ञान, स्वास्थ्य और राष्ट्रधर्म आदि विषय सुधी पाठकों के मनन के लिए चुने गए हैं और यह महकता गुलदस्ता तैयार किया गया है।

हमने तो 'अपनी बात' कह दी परन्तु आपकी प्रतिक्रिया कैसी रही, यह जानने के लिए हम निरन्तर उत्सुक रहेंगे।

–धर्मवीर सेठी

वैदिक विनय

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

–यजुर्वेदः 34/1

प्रभो! जागते हुए सदा जो दूर–दूर तक जाता है।
सोते में भी दिव्य शक्तिमय कोसों दौड़ लगाता है।
दूर–दूर वह जाने वाला **तेजों का भी तेज** निधान।
नित्य युक्त शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान्।।

That celestial entity which goeth far when man is in awakening phase and wanders similarly while he is in slumbering phase and that which travels far and wide is the **only one light;** may that mind of mine be possessed of auspicious intentions.

❖❖❖

शुभं करोति कल्याणम्,
आरोग्यं धन सम्पदाम्।
शत्रु बुद्धिः विनाशाय,
दीप–ज्योतिः नमोऽस्तुते।।

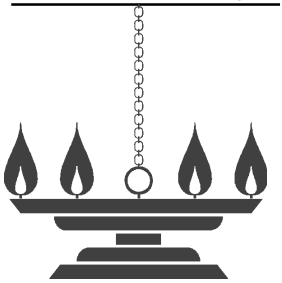

विजय दशमी एवं दीपावली की शुभकामनाएँ

सेवा की विरासत

❑ किशोर अग्रवाल

करुणा, दया, दान, परोपकार व सेवा मानव के मन के अनेक भाव हैं एवं ये भाव ही उसे समाज में प्रतिष्ठित स्थान दिलाते हैं। लेकिन इनमें सेवा का भाव सबसे भिन्न और सर्वश्रेष्ठ होता है क्योंकि करुणा, दया, दान और परोपकार में कहीं पर अप्रत्यक्ष रूप से कर्ता की श्रेष्ठता परिलक्षित होती है जब कि सेवा में कृतज्ञता का भाव समाहित है। सेवा में दास्य भाव छुपा है। सेवा में सेवा करने वाला सेवक कहा जाता है। सेवक में विनम्रता व कृतज्ञता का भाव होना आवश्यक है तभी वह 'सेवा' की कसौटी पर खरा उतरेगा।

मनुष्य में दो प्रकार की प्रवृत्तियां पाई जाती है एक दैवीय तथा दूसरी दानवीय। उदाहरणार्थ–मार्ग में दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को देखकर उसके आभूषण वस्त्र का सामान आदि चुराकर उसे मरने के लिए छोड़ देना जहाँ दानवीय वृत्ति का द्योतक है वहीं पर दुर्घटनाग्रस्त घायल व्यक्ति को अपना काम छोड़कर अस्पताल ले जाकर उसका इलाज कराना दैवीय प्रवृत्ति का द्योतक है तथा इसे सेवा की श्रेणी में रखा जा सकता है। 'सेवा' के लिए व्यक्ति में देवत्व या दैवीय प्रवृत्ति का होना आवश्यक है।

'सेवा' का कार्य सेवा करने वाले की प्रतिभा तथा उसकी अभिरुचि के अनुरूप हो तभी सेवा सार्थक होगी। एक चिकित्सक सेवा करता है तो वह समाज के रोगियों की चिकित्सा कर सकता है क्योंकि वह उसकी प्रतिभा तथा रुचि के अनुसार कार्य है। इसी प्रकार शिक्षक शिक्षा का दान देकर, धनी व्यक्ति धन का दान देकर समाज में सेवा कर सकता है।

सेवा उसी क्षेत्र में तथा उसी वर्ग के व्यक्तियों की की जानी चाहिये जहाँ उसकी वास्तव में आवश्यकता है अन्यथा सेवा निरर्थक रहती है। कुछ समाजसेवी व्यक्ति या संस्थाएं शहरों में चिकित्सा शिविर लगाते हैं, प्याऊ लगते हैं, कम्बल या वस्त्र आदि वितरित करते है किन्तु यहाँ पर इनकी न्यूनतम उपयोगिता होती है। यह सब स्वसुविधानुसार किया जाता है जबकि सेवा पात्र की आवश्यकतानुसार होनी चाहिये। दूर–दराज़ के गाँवों में चिकित्सा, पेय जल व शिक्षा की बहुत आवश्यकता रहती है। शहरी क्षेत्रों में बहुत सीमा तक इस प्रकार की सुविधायें उपलब्ध रहती हैं।

सेवा करने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह अपने परिजनों को भी अपने सेवा कार्य में सम्मिलित करे। इससे वे सब भी उसके उस सेवा कार्य में सहभागिता कर उसे प्रोत्साहित करेंगे अन्यथा हर समय उसकी आलोचना कर उसे निरुत्साहित करते रहेंगे। जहाँ तक संभव हो सेवा इस प्रकार की हो जिससे व्यक्ति आत्मनिर्भर बन सके न कि सदैव दूसरों पर आश्रित बना रहे। यदि किसी विकलांग की सेवा कर रहे हैं तो उसकी विकलांगता को ध्यान में रखते हुए उसे आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रशिक्षण व रोज़गार आदि के साधन उपलब्ध कराना वास्तविक सेवा है न कि उसको दान में भोजन या वस्त्र आदि देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेना। सेव्य को सक्षम व आत्मनिर्भर बनाना ही सच्ची सेवा है।

सेवक और सेव्य में ऐसा भाव हो जैसा किसी भक्त और भगवान में। सेवक को पूर्णतया: अहंकार रहित व कृतज्ञता से परिपूर्ण होना चाहिये। भक्त अपने भगवान के लिए बड़ी ही श्रद्धा तथा भक्ति के साथ भोग तैयार कर उसे भोग लगाता है तथा भोग लगाने के बाद भोग के विग्रह को स्वयं ग्रहण कर असीम आनन्द का अनुभव करता है तथा भगवान के प्रति अनन्य कृतज्ञता का भाव रखता है। उसके मन में कभी भूले से भी अहंकार का भाव नहीं आता तथा वह कभी ऐसा नहीं सोचता कि उसने भगवान को इतने स्वादिष्ट भोजन का भोग लगाकर उन पर अहसान किया है। ठीक इसी प्रकार सेवा करने वाले को भी सदैव सेव्य के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि ईश्वर ने उसे सेवा का अवसर प्रदान किया है एवं यह उसका सौभाग्य है।

भारत विकास परिषद् के पांच मूल मंत्रों में 'सेवा' तथा 'संस्कार' को सर्वाधिक महत्व दिया गया है क्योंकि 'सम्पर्क' 'सहयोग' और 'समर्पण' साधन हैं जबकि संस्कार पूरित सेवा लक्ष्य है। भारत विकास परिषद् पूरे देश के कोने–कोने में संस्कारवान सदस्यों के माध्यम से निर्धन, निर्बल, असहायों की सेवा कर पूरे देश को एक सूत्र में बांधता है तो कहीं पर तूफान व बाढ़ पीड़ितों की सहायतार्थ पूरे देश से कोष एकत्र कर राहत शिविर चलाता है। जिस क्षेत्र में जिस व्यक्ति या समूह को जैसी आवश्यकता होती है परिषद् उसी आवश्यकता के अनुसार सेवा कार्य में संलग्न है।

'नर सेवा नारायण सेवा' के सिद्धान्त पर चलती है भारत विकास परिषद्। इस संदर्भ में एक घटना का उल्लेख करना चाहूँगा। एक बार स्वामी विवेकानन्द से किसी ने प्रश्न किया कि स्वामी जी क्या आप भगवान की पूजा करते हैं? तो स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मुझसे जीवन में एक ही भूल हुई है कि मैं इंसान को ही भगवान मान बैठा हूँ तथा इंसान की सेवा को ही भगवान की पूजा या सेवा मानता हूँ अर्थात् 'नर सेवा नारायण सेवा'।

समाज में सेवा करने वाले विभिन्न प्रकार के व्यक्ति होते हैं तथा इन सभी के

सेवा करने के उद्देश्य अलग-अलग होते हैं। कुछ व्यक्ति सेवा दिखावे के लिए करते हैं, कुछ व्यक्ति नाम और पद पाने के लिए सेवा करते हैं, कुछ भगवान को खुश करने तथा परलोक सुधारने के लिए सेवा करते हैं लेकिन कुछ बिरले महापुरुष ऐसे भी होते है जो कि नि:स्वार्थ भाव से मानव सेवा करते हैं और बदले में समाज से या भगवान से किसी चीज़ की इच्छा नहीं रखते है। सेवा उनका एकमात्र लक्ष्य व धर्म बन जीवन के संस्कारों में समाहित हो जाता है।

ऐसे ही नि:स्वार्थ समाजसेवी तथा महान कर्मयोगी ने भारत के महाराष्ट्र प्रान्त के ज़िला वर्धा में हिंगनघाट में 26 दिसम्बर 1914 को एक धनी ब्राह्मण 'जागीरदार' के घर में मुरलीधर देवदास आमटे के रूप में जन्म लिया जिन्हें दुनिया बाबा आमटे के नाम से जानती है। बाबा का उपनाम माँ-बाप द्वारा दिया गया सम्बोधन था। इनका बचपन ऐशो आराम के साथ बीता। बाबा आमटे ने कालिज के दिनों में भारत के अनेक स्थलों का भ्रमण किया तथा कलकत्ता में रवीन्द्र नाथ टैगोर तथा शांति निकेतन से बहुत प्रभावित हुए। बाबा आमटे एक सफल अधिवक्ता थे। 1946 में आपकी शादी (इन्दु) साधना गुल शास्त्री के साथ हुई। शादी के बाद बाबा आमटे का जीवन पूर्णतया बदल गया। बाबा ने कुष्ठ रोगियों की सेवा, उनका पुनर्स्थापन, पर्यावरण जागरूकता, वन्यजीवन संरक्षण तथा नर्मदा बचाओ आंदोलन में बहुत कार्य किया। बाबा आमटे ने नरौरा चंद्रापुर ज़िला महाराष्ट्र में 'आनंद वन' को 1951 में पंजीकृत कराया था तथा वर्तमान में आनन्द वन में 2 अस्पताल, 1 यूनिवर्सिटी, 1 अनाथालाय, 1 अंधविद्यालय चलता है तथा 5000 व्यक्ति इसमें रहते हैं। बाबा को पद्मश्री, पद्म विभूषण, जमनालाल बजाज, जी.डी. बिरला इन्टरनेशनल अवार्ड के अतिरिक्त अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार दिये गये तथा 1974 में बाबा आमटे को मैगसासे अवार्ड दिया गया। बाबा आमटे ने लगभग 1.5 करोड़ रुपये की जो पुरस्कार राशि उन्हें विभिन्न पुरस्कारों से प्राप्त हुई थी, आनन्दवन को दे दी। बाबा ने महात्मा गाँधी से प्रेरणा पाकर उनके साथ स्वतन्त्रता संग्राम में भी भाग लिया। मानवता की सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन लगाने वाले इस नि:स्वार्थ कर्मयोगी ने 1 फ़रवरी 2008 को आनन्दवन में अंतिम सांस ली तथा सेवा का पर्याय बन इस नश्वर संसार से चले गए।

समाज में प्राय: व्यक्ति अपनी संतान को विरासत में अपना धन दौलत, सम्पत्ति तथा पद देकर जाता है। उद्योगपति अपने उद्योग, डॉक्टर इंजीनियर अपना व्यवसाय, जमींदार व राजा महाराजा अपनी सम्पत्ति तथा राजगद्दी अपनी संतान को विरासत में सौंपकर जाते हैं लेकिन ऐसे महापुरुष दुर्लभ हैं जो अपनी संतान को

विरासत में 'सेवा' जैसे संस्कार देकर जाते हैं। बाबा आमटे आजीवन 'सेवा' करते रहे तथा अपने पुत्र विकास आमटे और प्रकाश आमटे को भी विरासत में 'सेवा' के संस्कार दे कर गए है।

डॉ. विकास आमटे ने बाबा आमटे द्वारा स्थापित आनन्द वन का गत 20 वर्षों से कार्य भार सम्हाला हुआ है तथा पत्नी डॉ. भारती आमटे के साथ आनन्द वन में ही प्रशासक, डॉक्टर आर्चोटेक्ट, इंजीनियर व पब्लिक रिलेशन ऑफिसर की भूमिकाओं का निर्वाह कर रहे हैं। डॉ. विकास आमटे स्वयं को इस बड़ी सामाजिक जेल का कैदी मानते है। डॉ. विकास आमटे ने आनन्द वन में ही 'महारोगी सेवा समिति' की स्थापना की तथा इसके सचिव के रूप में कार्य कर रहे है। विकास आमटे के अनुसार वास्तव में इनका संगठन एक मानवाधिकार संगठन है जो कुष्ठ रोगियों व निर्धन लोगों को इलाज, स्वास्थ प्रशिक्षण, व उनके पुनर्वास के लिए कार्य करता है। वर्तमान में ये 27 प्रोजेक्ट चला रहे है जो 1949 में बाबा आमटे ने शुरू किये थे।

बाबा के दूसरे पुत्र प्रकाश आमटे तथा इनकी पत्नी डॉ. मंदाकिनी आमटे भी अपने पिता के पद्चिन्हों पर चल कर गत 30 वर्षो से आदिवासी ग्राम हेमालकसा जो गढ़ चिरोली ज़िले में महाराष्ट्र प्रान्त में माडिया गौड़ आदिवासियों के बीच सामाजिक जागरूकता तथा पर्यावरण के लिए एक स्कूल व एक अस्पताल चला रहे हैं। आज से 40 वर्ष पूर्व बाबा आमटे ने पेड़ की छाँव में जो क्लीनिक रोगियों की चिकित्सा के लिए शुरू किया था वह आज 50 बिस्तर व 4 डॉक्टरों वाला अस्पताल बन गया है। जिससे प्रतिवर्ष 40,000 रोगियों का नि:शुल्क इलाज होता है। आमटे दम्पत्ति ने गौड़ आदिवासियों की जिंदगी में एक क्रान्ति ला दी है। इन आदिवासियों में से आज वकील, डॉक्टर, इंजीनियर व अध्यापक तथा पुलिसकर्मी भी बन गए हैं तथा इनमें से 90 प्रतिशत स्नातक मय डॉक्टर प्रकाश के बेटों के समाज सेवा के लिए वापिस आ जाते हैं। स्कूल में लगभग 600 छात्र शिक्षा प्राप्त करते हैं।

डॉ. प्रकाश आमटे और डॉ. मंदाकिनी आमटे को 31 अगस्त 08 को मनीला में सामुदायिक नेतृत्व के लिए मैगसेसे अवार्ड प्रदान किया गया है। डॉ. मंदाकिनी आमटे आदिवासी स्त्रियों में स्वास्थ्य तथा अंधविश्वासों के खिलाफ जागरूकता पैदा करने के लिए कार्य कर रही हैं तथा डॉ. प्रकाश आमटे रोगियों के इलाज में लगे हुए है। इनका अस्पताल क्षेत्रीय केन्द्र के रूप में माँ और बच्चे के स्वास्थ व कल्याण के लिए कार्यरत है।

उल्लेखनीय है कि आमटे परिवार ने कुष्ठ रोगियों के लिए उस विषमकाल में कार्य प्रारम्भ किया जब समाज कुष्ठ रोग को छूत का रोग मान कर उससे घृणा

(शेष पृष्ठ 14 पर)

स्वयं सेवी संस्थाएं

❑ संतोष अग्रवाल

लोकतंत्रीय राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार व जनता दोनों एकजुट होकर एक उदार और सभ्य समाज का निर्माण करते हैं। जनता चुनाव और विकास परियोजनाओं में ही केवल भाग ही नहीं लेती अपितु साझे भविष्य के निर्माण में भी साथ देती है।

भारत में स्वयं सेवी प्रयास का इतिहास यथार्थत: इतना ही पुराना है जितनी कि हमारी स्वयं सभ्यता। इस संदर्भ में कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी 1939 में शान्ति निकेतन के कार्यकर्त्ताओं को दिए गए भाषण में कहा था कि ''हमें ऐसा प्रयास करना चाहिए कि ग्रामीणों के भीतर से उत्पन्न उनकी स्वयं की शक्ति ही हमारे साथ कार्य कर रही हो, यद्यपि हमारे लिए सारे देश के बारे में सोचने की आवश्यकता नहीं है। मैं सारे भारत का उत्तरदायित्व नहीं ले सकता। मेरी इच्छा केवल एक या दो गाँवों में सफलता प्राप्त करने की है। हमें उनके साथ मिलकर काम करने के लिए शक्ति जुटाने हेतु उनके दिल–दिमाग तक पहुँचना है। यह आसान कार्य नहीं है, यह बहुत दुस्तर कार्य है और जिसके लिए कठोर आत्मानुशासन की आवश्यकता है। यदि मैं केवल एक या दो गाँवों को अज्ञानता और कमज़ोरी से मुक्त कर सका, तो यह छोटे पैमाने पर एक सृजन कार्य होगा जोकि पूरे भारतवर्ष के लिए एक आदर्श होगा–इस आदर्श को केवल कुछ गांवों में ही पूरा कर लो तो मैं कहूँगा कि ये कुछ गांव ही मेरा भारत है।''

टैगोर द्वारा 1922 में स्थापित निकेतन भी पुन: निर्माण की संस्था है। वास्तव में स्वयं सेवी एजेंसियां स्थानीय स्रोतों का प्रयोग करना, कम लागत की श्रम मूलक परियजोनाएँ चलाना तथा लोगों को उसमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना तथा पर्यावरण और इससे सम्बन्धित सूक्ष्म स्तर के कार्यक्रमों की योजना बनाना तथा प्रचालन करने के ऐसे कार्यक्रम प्रदान करने में सशक्त भूमिका अदा करती हैं। ये ऐसे कार्यक्रम हैं जिनको सामान्य व्यक्ति भी चला सकता है। सरकारी स्तर की बजाय स्वयं सेवी स्तर पर कार्यक्रम किए जाने के विभिन्न कारण हैं:–

चूंकि स्वयं सेवी एजेंसियां लघु पैमाने पर कार्य करती हैं, अत: स्थानीय दशा तथा अनुभव को प्रबन्ध योग्य तथा प्रतिक्रियात्मक बनाती हैं।

स्थानीय व्यक्तियों के निकट सम्पर्क में रहने से स्थानीय समुदायों से उनकी अच्छी घनिष्ठता रहती है।

वे स्थानीय रीति–रिवाजों और लोगों की इच्छाओं को सरकारी स्टॉफ की तुलना में अधिक समझती हैं।

सरकारी स्टॉफ़ की तरह स्वयं सेवी एजेंसियों के कार्यकर्त्ताओं का जल्दी–जल्दी स्थानान्तरण भी नहीं होता। अत: जिस समुदाय के लिए वे काम करते हैं उससे वे लगातार सम्बन्ध बनाए रख सकते हैं।

वे विकास के प्रति वचनवद्ध हैं, जबकि सरकारी कर्मचारी वचनवद्ध नहीं हैं अथवा यदि हैं भी तो अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा।

वे अधिकारी तन्त्र के नियम और प्रक्रियाओं से बंधे हुए नहीं हैं। अत: वे बहुत लचीलेपन के साथ कार्य संचालन करते हैं और उनमें प्रयोग तथा अनुभव के आधार पर अपनी गतिविधियों को संचालन करने की योग्यता की पर्याप्त गुंजाइश है।

मूलभूत एजेंसियों होने के कारण वे स्थानीय आवश्यकताओं को जल्दी ही पूरा कर सकते हैं।

वे बहुत लोगों के विचारों अर्थात् स्वयं सेवी एजेंसियों के सदस्य और गैर सदस्यों दोनों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

तथापि स्वयं सेवी एजेंसियों की अपनी सीमाएं हैं और कई एक कारणों से उन्हें अनेकों परेशानियां उठानी पड़ती हैं जो कुछ इस प्रकार हैं:–

कम वेतन होने के कारण शिक्षित और सक्षम स्टाफ को नियुक्त करने में असमर्थ होना।

उनमें व्यवसायवाद (Professionalism) नहीं है।

यद्यपि वे अपने दार्शनिक और आदर्शवादी पुनर्निर्माण के बारे में एक स्वर से कहती हैं किन्तु उनकी गतिविधियां उन पर आधारित नहीं है।

विशेषज्ञता में कमी के कारण उनका दृष्टिकोण सीमित है।

प्रशिक्षित और शिक्षित कार्मिकों के अभाव में रिकार्ड व हिसाब रखने में कठिनाई होती है।

उनके पास सूचनाएं प्राप्त करने के साधन सीमित हैं।

उनके पास स्रोत अपर्याप्त हैं।

इसके साथ ही स्वयं सेवी एजेंसियों की कुछ अपनी भी कमियां हैं जैसे–

अधिकतर मामले में संस्थाएं व्यक्तिगत तथा पैतृक हैं। अत: वे या तो बहुत छोटी हैं या बहुत बड़ी हैं। अत: उन्हें प्रभावी ढंग से नहीं चलाया जा सकता।

किसी–किसी संस्था को एक व्यक्ति या ऊपर के कुछ व्यक्ति ही चलाते हैं।

परियोजना तक पहुँची बहुत सी सहायता प्राप्त एजेन्सियां कुछ व्यक्तियों को ही संस्था चलाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

स्वयं सेवी एजेंसियों की अपनी समस्याएं भी कम नहीं है। वास्तव में उनके वित्तीय स्रोत कम हैं। इसी समस्या के कारण कुछ स्वयं सेवी एजेंसियां एकाध गतिविधि को छोड़ने अथवा कुछ गतिविधियों को एक साथ मिलाने अथवा केवल दूसरी गतिविधि जिसके लिए धन उपलब्ध है को ही अपनाने के लिए विवश हो जाती हैं।

दूसरी समस्या सरकार तथा सहायक एजेंसियों से तदर्थ अनुदान की प्राप्ति की है जिसके कारण वे केवल तदर्थ कार्यक्रम चलाने वाले निकाय बनकर रह जाते हैं। इससे नए प्रवेशक, चाहे व्यक्ति अथवा संस्था जिनके पास ग्रामीण व्यक्तियों की सेवा करने की इच्छा व योग्यता है, का प्रवेश प्राप्त नहीं हो पाता।

तीसरी समस्या है कि जो स्वयं सेवी एजेंसियां बची भी रह जाती हैं और जिनके ऊपर कोई आन्तरिक दबाव नहीं है, अपनी पितामही दानी भूमिका में संस्था को मुख्य केन्द्र बनाना चाहती हैं अत: वह प्रयोजन जिसके लिए यह बनाई गई थीं, ओझल हो जाता है।

चौथी समस्या है कि जब जैसे–जैसे कोई संस्था अपने क्षेत्र तथा गतिविधियों में विस्तार पाती है तो कुछ मशहूर व्यक्ति प्राय: प्रभुता जमाना शुरू कर देते हैं और संस्था स्वयं अर्धनौकरशाही ढांचे में बदल जाती है जहां कि पहल या निर्णय ऊपर के कुछ व्यक्तियों का परम अधिकार बन जाता है। इससे या तो संस्थापन कार्य करने का लचीलापन प्रभावित होता है अथवा संस्था का लोकतान्त्रिक पहलू प्रभावित होता है और भविष्य में नए नेताओं के बनने में रुकावट पैदा करता है। इससे युवा वर्ग अपना विचार अथवा दृष्टिकोण प्रकट नहीं कर पाते और उनकी भावनाएं दबा दी जाती हैं। इस निराशा की स्थिति में वे या तो संस्था को ही छोड़ देते हैं अथवा कोई विकल्प न होने पर परेशान व्यक्ति की तरह रहते हैं और अपनी इस परेशानी को व्यक्त करने के लिए अवसर तलाशते रहते हैं। इससे संस्था के अन्दर तुच्छ राजनीति का मार्ग प्रशस्त होता है।

आज की वास्तविक स्थिति यह है कि भले ही गैर सरकारी और सरकारी संगठनों का बाहुल्य है परन्तु गरीब फिर भी गरीब है। अत: आवश्यकता इस बात

की है कि स्वयं सेवी एजेंसियों को कारगर बनाया जाए और इसके लिए अपेक्षित है कि सर्वप्रथम तो स्वयं सेवी एजेंसियां गुट–निरपेक्ष तथा गैर राजनीतिक हों। इसके लिए उन्हें सरकारी संरक्षण से मुक्त रखा जाए।

दूसरे राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रही संस्थाओं की रिपोर्ट वार्षिक आधार पर जनता के सामने लाई जाए और बेहतर हो कि प्रकाशित कराकर वितरित की जाए।

तीसरे यह भी सुनिश्चित किया जाए कि जिस उद्देश्य के लिए वह संस्था बनाई गई है वह उस उद्देश्य को पूर्ण कर रही है या नहीं। ऐसा न हो कि संस्था बनाई गई हो बन्धुआ मज़दूरों को रोकने के लिए और पता चले कि संस्था में ही बन्धुआ मज़दूर कार्यरत हैं।

चौथे स्वयं सेवी एजेंसियों के पदाधिकारी किसी भी राजनैतिक पार्टी से सम्बन्धित नहीं हों।

पांचवें सरकार की नीतियों के प्रति जागरूक करने के लिए औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से लोगों को शिक्षित किया जाए।

समय की पुकार है कि स्वयं सेवी एजेंसियों की भूमिका, उनकी शक्ति एवं अपेक्षाओं को पहचाना जाए। यदि उनकी शक्ति का उपयोग गरीबी के उत्थान के लिए किया जाता है तो यह आवश्यक है कि उनके द्वारा अनुभव किये जाने वाली कठिनाइयाँ को दूर किया जाए। सरकार का रवैया सकारात्मक होना चाहिए। स्वयं सेवी एजेंसियों की संख्या बढ़ने दी जाए और उन्हें दूर–दूर तक फैलने दिया जाए। उनकी विद्यमानता देश में स्वस्थ लोकतन्त्र का प्रतीक है। ❑

– ए–77, 'स्मृति ' , मधुवन कॉलोनी, दिल्ली–100 092

(पृष्ठ 10 का शेष भाग)

करता था तथा इसे पूर्व जन्मों के पापों का फल मानता था। मानवीय इतिहास में यह सबसे पुरानी व घृणित बीमारी मानी जाती है।

नि:संदेह बाबा आमटे तथा उनकी विरासत को संजोये उनके पुत्र तथा पुत्रवधुएँ प्रशंसा के पात्र है तथा समाज के लिए अनुकरणीय है जो 'सेवा' को विरासत में सौंपकर गए है और आमटे परिवार आज भी समाजसेवा में लगा हुआ है। ❑

'विज्ञान लोक' निकट मेरठ बस स्टैण्ड,
बुलन्दशहर (उ.प्र.)

1 सितम्बर पुण्य तिथि पर विशेषः

महादेवी वर्मा के निबन्धों में मौलिक चिन्तन का शाश्वत आदर्श

❑ डॉ. चम्पा श्रीवास्तव

''चिरध्येय यही जीवन का, ठंडी विभूति बन जाना।
है पीड़ा की सीमा यह, दुख का चिर सुख बन जाना।।''

महादेवी जी आधुनिक साहित्यकारों में उच्चतम शिखर पर पहुँचने वाली प्रथम महिला हैं। महीयसी महादेवी वर्मा ने दुःख को ही ऐसी रागात्मिका वृत्ति के रूप में स्वीकार किया है जो व्यष्टि को समष्टि की ओर उन्मुख कर सकती है। वे मानती थी कि सुख व्यक्ति के आत्म का संकुचन है और दुःख उसका प्रवाह।

छायावाद के प्रमुख चार स्तम्भों की महान कड़ी महीयसी महादेवी वर्मा आधुनिक साहित्यकारों में उच्चतम शिखर पर पहुँचने वाली प्रथम महिला हैं। जिस प्रकार काव्य के क्षेत्र में महादेवी जी ने विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है, उसी प्रकार गद्य के क्षेत्र में भी मौलिक चिंतन एवं मनन के सहारे विशिष्ट जीवन दर्शन, अप्रतिम विश्लेषण तथा अनुपम दृष्टि का आदर्श प्रस्तुत किया है। महादेवी जी को पद्य एवं गद्य दोनों पर समान अधिकार है। हिन्दी साहित्य में जो स्थान 'नीरजा', 'यामा', तथा 'दीपशिखा', आदि का है ठीक वही स्थान 'क्षणदा, 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएं', 'शृंखला की कड़ियाँ' तथा आलोचनात्मक गद्य आदि ग्रन्थों को दिया जाता है। महादेवी वर्मा जो गद्य में हैं वही अपने काव्य में हैं। गद्य में इनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से हुई है और काव्य में परोक्ष रूप से। निबन्धों में वे मुखर हैं जबकि काव्य में प्रच्छन। काव्य में वे विरहिणी हैं तो निबन्धों में विद्रोहिणी। इसका एक मात्र कारण यह है कि काव्य में संकेत शैली का आश्रय लेने हेतु बाध्य हैं और गद्य में खुले रूप में स्वयं के भावों और विचारों को व्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र। महादेवी जी के निबन्धों में जीवन का स्पन्दन तथा आत्मा का कंपन स्पष्ट परिलक्षित होता है। स्वयं के निबन्ध सृजन के द्वारा धरा के दुखी व्यक्तियों के आँसू पोंछना उनके गद्य की विलक्षणता है। वैयक्तिक और सामाजिक

उपेक्षाजन्य परिस्थितियों में उनके निश्छल मन पर जो प्रभाव पड़ा, उसी का मूर्त्त रूप है–उनका निबन्ध लेखन। 'क्षणदा' में अपने निबन्धों का परिचय देते हुए महादेवी वर्मा ने स्वयं लिखा है–

''क्षणदा में मेरे कुछ चिन्तन के क्षण एकत्र हैं। इनमें न तर्क की प्रक्रिया है और न किसी जटिल समस्या के लिए समाधान। उसमें बौद्धिक व्यायाम के दांव–पेंच नहीं मिलेंगे और न जीवन की जटिल समस्याओं के हल ही, हाँ सुझाव अवश्य मिल सकते हैं।''

महादेवी वर्मा ने सर्वप्रथम निबन्ध तब लिखा जब वे कक्षा सात में पढ़ती थीं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि उनकी विचार एवं मनन शक्ति बाल्यकाल से ही गहनता की ओर उन्मुख हो गयी थी। डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की नव्य अर्थ दीप्ति के अनुकूल ही महादेवी जी ने भी गूढ़ गुम्फित परम्परा को अपनाते हुए अत्यन्त ही प्रौढ़ संयत एवं परिष्कृत भाषा में समुन्नत निबन्धों का सृजन किया। विचारात्मक, भावात्मक एवं वर्णनात्मक निबन्धों का सृजन उन्हें इस परम्परा का अधिकारी निबन्धकार बना देता है। 'साहित्यकार की आस्था', ''शृंखला की कड़ियाँ'', 'नारीत्व का अभिशाप', 'साहित्य और साहित्यकार' तथा 'यथार्थ और आदर्श' आदि ऐसे विचारात्मक निबन्ध हैं जिनके प्रत्येक पैराग्राफ में विविध तथ्यों का निरूपण करते हुए संश्लेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक विचारों को दबा–दबा कर कसा गया है। यथार्थ और आदर्श सम्बन्धी निबन्ध जहाँ एक ओर आदर्श और यथार्थ की न्यायसंगत व्याख्या प्रस्तुत करता है, वहाँ दूसरी ओर यह भी स्पष्ट करता है कि साहित्य में इन दोनों का समन्वित रूप ही मान्य है–''आदर्श की रेखाएं कल्पना के सुनहले–रुपहले रंगों से तब तक नहीं भरी जा सकती जब तक उन्हें जीवन के स्पन्दन अर्थात् यथार्थ से न भर दिया जाये। यथार्थ की तीव्र धारा को दिशा देने के पहले उसे आदर्श के कूलों का सहारा देना आवश्यक है।'' इसी प्रकार ''शृंखला की कड़ियाँ'' में भारतीय नारी की समस्याओं का जो विवेचन किया है इसमें उनकी जागरूक मनोवृत्ति के साथ–साथ क्रांतिकारी प्रवृत्ति, विद्रोही स्वर एवं नारी–स्वातन्त्र्य के लिए जो छटपटाहट व्यक्त हुई है वह महादेवी जी के निबन्धों को कालजयी बनाने में सक्षम है। गद्य लेखिका ने इस संकलन में नारी में विद्यमान उन प्रसुप्त शक्तियों का भी आह्वान किया है जिनको विस्मृत करके भारतीय नारी सबला से अबला और दुर्गा से दया की पात्र बन गयी। महादेवी वर्मा नारियों में नवजागरण का मंत्र फूंकती हुयी स्वयं के बुद्धि तत्व का परिचय शृंखला की कड़ियाँ में इस प्रकार देती हैं–

''इच्छा और प्रयत्न से बहनें अपनी रक्षा में स्वयं समर्थ हो सकती हैं, इसमें सन्देह नहीं परन्तु इस इच्छा और प्रयत्न का जन्म उनके हृदय में सहज ही न हो सकेगा। जिस घर में आग लगती है, उसी समय कुआँ खोदने वाले को राख के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला। आवश्यकता है ऐसे देशव्यापी आन्दोलन की जो सबको सजग कर दे और अत्याचारों का तुरन्त अंत हो जाये।''

महादेवी वर्मा के आत्माभिव्यंजना प्रधान संस्मरणात्मक निबन्ध भावात्मक निबन्धों की कोटि में आते हैं। इनमें बुद्धि की अपेक्षा रागात्मक मनोवृत्तियाँ प्रभावी रूप से विद्यमान हैं। इन निबन्धों के अन्तर्गत 'अतीत के चलचित्र' में संग्रहीत सभी संस्मरणात्मक निबन्धों में कहीं विधवा नारी की दयनीय स्थिति, कहीं पददलित अबला की करुण मूर्ति, कहीं विश्वास पात्र सेवक का चित्रांकन तथा कहीं सुकुमार बालिका का चेहरा हमारे मनश्चक्षुओं के समक्ष उपस्थित हो जाता है। ऐसा लगता है कि ये सभी जीते जागते चलचित्र हैं जिनमें गत्यात्मक सौन्दर्य के साथ ही भावनाओं की तरलता, अनुभूति की सरसता तथा कल्पना की रंगीन छटा विद्यमान है,। इसी प्रकार 'स्मृति की रेखाएं' निबन्ध संग्रह में 'भक्तिन', 'चीनी फेरीवाला', 'दो पहाड़ी कुली' तथा 'रग्घू तेली' की आकृतियाँ साकार हो उठी हैं। छोटे कद और दुर्बल शरीर वाली भक्तिन अपने ही जेठ–जेठानी के लालची हाव–भाव एवं ईर्ष्या को देखकर अपने स्वाभिमानी व्यक्तित्व को व्यक्त करती है।

''हम कुकरी–बिलारी न होय।
हमार मन पुसाई तौ हम दूसर के जाब
नाहि त तुम्हार पचै की छाती पै होरहा भूँजब
औ राज करब, समुझै रहौ।''

यह है सामाजिक स्वार्थों एवं अभिशापों का ज़ोरदार प्रतिकार जिसका मूल उस आत्मपीड़ा के साथ ही साथ जन मन की पीड़ा भी है। निबन्ध कला को अभिनव दीप्ति से अभिमंडित किया महादेवी जी के संस्मरणात्मक निबन्धों ने। 'मैथिलीशरण गुप्त', 'जयशंकर प्रसाद', 'सुमित्रानंदन पंत' तथा 'सुभद्राकुमारी चौहान' आदि निबन्धों में वे स्वीकार करती हैं कि जीवन अनुभूतियों की संसृति है। परिवेश से सम्पर्क किसी न किसी सुखद या दुखद अनुभूति को जन्म देता है। 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' की निम्नांकित पंक्तियाँ उनके चिन्तन संस्कार को अभिव्यक्त करने में सफल हैं–

''बिना कुछ सोचे विचारे निराला से पूछ बैठी–आपके किसी ने राखी नहीं बांधी ?'' तो एकाकी जीवन की व्यथा प्रकट करते हुए उत्तर मिला–''कौन बहन हम

जैसे भुक्खड़ को भाई बनावेगी। तब अव्यक्त चुनौती के आभास ने ही मुझे उस हाथ के अभिषेक की प्रेरणा दी। उस हाथ की जिसने कभी गीत सुमनों से भारती की अर्चना की थी तो कभी बर्तन माँजने और पानी भरने जैसी कठिन श्रम साधना।''

वास्तव में समय-समय पर महादेवी जी के चिन्तन को जिन महान व्यक्तियों ने दिशा और संवेदना दी, वे सभी उनके संस्मरणात्मक निबन्धों के प्राण तत्व हैं। उन्होंने कतिपय ऐसे निबन्धों का भी सृजन किया है जिनमें तार्किकता का आश्रय न लेकर काल्पनिकता को महत्व प्रदान किया गया है। ऐसे निबन्धों में तीर्थ, दर्शनीय स्थान, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा यात्रा आदि का अत्यन्त ही मनोरंजक वर्णन मिलता है। 'स्वर्ग का एक कोना' 'सुई दो रानी डोरा दो रानी' तथा 'बद्रीनाथ' की यात्रा आदि निबन्धों में महादेवी वर्मा ने एक ओर तो काव्य की मार्मिक अनुभूति तथा दूसरी ओर ऐतिहासिक तथ्यों के रमणीय चित्र अंकित किये हैं। महादेवी वर्मा गूढ़ से गूढ़ विचार को भी सहज अभिव्यक्ति देने में पारंगत हैं। 'स्मृति की रेखाएं' निबन्ध संग्रह की 'भक्तिन' के अर्थ गाम्भीर्य एवं प्रसंग माधुर्य को सहजता से इस प्रकार व्यक्त किया है-

''सेवक-धर्म में हनुमान जी से स्पर्धा करनेवाली भक्तिन किसी अंजना की पुत्री न होकर एक अनामधन्या गोपालिका की कन्या है''

भावों की भांति ही महादेवी वर्मा की भाषा हर वर्ग को अपनी लगती है। उनके निबन्धों में शुद्ध तत्सम शब्दों के साथ ही उर्दू, फारसी तथा लोक प्रचलित शब्दों का सजीव प्रयोग किया गया है।

निष्कर्षत: महीयसी महादेवी वर्मा के निबन्धों में अनुभूति की आर्द्रता, कवित्व की चारुता, पांडित्य की प्रखरता एवं चिंतन की मौलिकता अपनी समग्रता के साथ विद्यमान है। 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' उक्ति को चरितार्थ करते हुए महादेवी जी के निबन्ध जीवन की आंच में तपकर निखरे हैं, शायद इसीलिए कालजयी हैं। ❑

-बी-64 आनंद नगर, रायबरेली

मधुर मधुर मेरे दीपक जल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर।
-महादेवी वर्मा

समय, समाज और पत्र-पत्रिकाएँ

❑ संजय कुंदन

इन दिनों मीडिया की भूमिका को लेकर एक बहस छिड़ गई है। हिन्दी का बौद्धिक जगत हिन्दी पत्रकारिता पर कई तरह के सवाल खड़े कर रहा है। इनमें पत्रकारों की भी एक जमात शामिल है। आज के अखबारों और टीवी चैनलों पर ये लोग आरोपों की बौछार कर रहे हैं। इनकी शिकायत है कि आज का मीडिया धीरे-धीरे गंभीर राजनीति को दरकिनार कर रहे हैं। दूसरी शिकायत यह है कि मीडिया के सरोकार बदल गए हैं, वह किसानों-मज़दूरों की समस्याओं, बेरोज़गारी तथा मंहगाई जैसे मुद्दों की उपेक्षा कर रहा है, वह जनसंघर्षों की खबरों को दबा रहा है। मीडिया पर आरोप यह भी है कि वह ग्लैमर और चकाचौंध को ज़्यादा से ज्यादा परोस रहा है और भाषा को भी नष्ट कर रहा है। दिलचस्प तो यह है कि मीडिया के बदलते रूप पर इस तरह की कड़ी टिप्पणियां तो हो रही हैं, पर इसका विश्लेषण करने की कोशिश नहीं हो रही कि आखिर किन परिस्थितियों और प्रक्रिया में मीडिया यहाँ तक आ पहुँचा है। यह भी समझ में नहीं आता कि मीडिया की भूमिका पर आपत्ति करने वाले आज के बरस्क मीडिया के किस मॉडल को खड़ा करना चाहते हैं।

आज ही नहीं, आज से पहले भी पाठकों के मूड और उनकी बदलती रुचियों को समझ पाना एक पहेली से कम नहीं रहा है। जब समाज या संस्कृति का कोई स्थिर या रूढ़ स्वरूप नहीं होता तो मीडिया का कैसे हो सकता है! फिर समाज और मीडिया का संबंध अपने-आप में काफ़ी जटिल है। समाज में हो रहे परिवर्तनों के अनुरूप मीडिया का रूप और स्वभाव भी बदलता रहा है। जिस तरह समाज की बदलती रुचियों को समझना सरल नहीं है, उसी तरह से मीडिया के बदलते रूप के बारे में अंतिम रूप से कुछ निष्कर्ष निकालना आसान नहीं है। वैसे एक बात तो साफ़ है कि आज के मीडिया पर सवाल उठाने वालों के दिमाग में अतीत की कुछ छवियां बैठी हुई है। वे अक्सर दिनमान, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका आदि के दौर को याद करते हुए आज की पत्रकारिता की उस समय की पत्रकारिता से तुलना करते हैं। लेकिन यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या हिन्दी पट्टी का सामाजिक जीवन

अब भी वैसा ही है, जैसा उस दौर में था ? क्या उसी दौर में रुचियां बदलती नहीं रही हैं ?

आज़ादी के बाद के कुछ दशकों तक हिन्दी का पाठक वर्ग दर असल उस पीढ़ी से बना था जो किसी न किसी रूप में स्वतंत्रता आंदोलन या उसकी स्मृति से जुड़ी रही थी। इस तबके के भीतर भारत के नव निर्माण के कई स्वप्न थे। उस पढ़े–लिखे मध्यवर्गीय तबके को आज़ादी से काफ़ी उम्मीदें थीं। वह भारत का नेतृत्व संभालने वाले शासक वर्ग को भी आशाभरी नज़रों से देखता था। उस समय नए शासक वर्ग के नेतृत्व में केवल भारत के सामाजिक आर्थिक नव निर्माण का ही अभियान नहीं चलाया जा रहा था, बल्कि इसके समानांतर सांस्कृतिक अस्मिता की खोज के प्रयास भी जारी थे। इस प्रयास की झलक उस काल के साहित्य और सिनेमा में दिखती है। धीरे–धीरे इसकी अभिव्यक्ति मीडिया में दिखाई पड़ी। जो भी वैचारिक उथल–पुथल उस मध्यवर्गीय बौद्धिक समाज में हो रही थी, वह मीडिया में भी सामने आई। यानी उस दौर में मीडिया ने वैचारिक बहसों को आगे बढ़ाने के साथ–साथ लोगों को एक तरह से शिक्षित करने का काम किया।

उस समय पढ़े–लिखे वर्ग में अपने समाज, संस्कृति के साथ–साथ पूरी दुनिया में चल रहे विमर्शों के बारे में जानने की भूख सी थी। इसलिए उस समय एक के बाद एक पत्रिकएं निकलीं और लंबे समय तक चलीं भी। उस समय खबरें पीछे थीं। यानी वह एक तरह से विचार या फीचर का दौर था। देश में बड़े संस्थानों की ओर से निकलने वाले राष्ट्रीय अखबारों में भी वही सबसे ज्यादा पढ़े जाते थे जो गंभीर बहस, और फीचर को प्रमुखता देते थे। राजनीति तब जटिल नहीं हुई थी और मध्यवर्गीय समाज रोज़मर्रा की सियासत में बहुत दिलचस्पी नहीं लेता था। तब टीवी का व्यापक प्रसार नहीं हुआ था। हुआ भी तो बहुत दिनों तक सरकारी टीवी ही प्रचलन में रहा, प्राइवेट चैनल तो बहुत बाद में आए। ऐसे में अगर समाज मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन के लिए अखबारों और पत्रिकाओं पर आश्रित था तो इसमें आश्चर्य कैसा! क्यों हम उनके रिकार्ड सरकुलेशन पर हैरत में पड़ जाते हैं और आज भी वैसी ही अपेक्षा करने लगते हैं ? खैर, इमरजेंसी और जेपी आंदोलन के बाद एकाएक खबरें परिदृश्य पर आ गई। राजनीति के कई नए आयाम सामने आए। जनतंत्र का विस्तार तो हुआ ही, उसकी कई विसंगतियाँ भी पहली बार इतने साफ़ तौर पर खुलकर सामने आईं। इस समय तक पाठक वर्ग का दायरा भी बढ़ गया था। शिक्षा के प्रसार के साथ एक नई पीढ़ी सामने आ गई थी जो देश को यथार्थ के नए रूप में देख रही थी। वह अपनी पिछली पीढ़ी की तुलना में कम नॉस्टैल्जिक थी। अब पाठक वर्ग का राजनीति

के प्रति रुझान बढ़ा। राजनीतिक दांवपेच और स्कैंडल से लेकर हर तरह के उठापटक को पढ़ने में पाठक रस लेने लगा। अखबारों में पॉलिटिकल न्यूज़, एक्सक्लूसिव स्टोरीज़ और स्कूप तो छपने ही लगे, न्यूज़ मैगजीन की अवधारणा भी सामने आई। इसी क्रम में 'रविवार' और बाद में 'माया' की पहचान बनी।

देश में कम्प्यूटरीकरण और प्रिंटिंग टेक्नोलॉजी के विकास के बाद अखबारों के कलेवर में आमूल बदलाव आया। रंगीन और आकर्षक पेजों का सिलसिला शुरु हूआ और अखबारों में विज़ुअल का महत्व बढ़ा और एक बार फिर फ़ीचर को नए सिरे से प्रतिष्ठा मिलने लगी, जिसमें कंटेंट से ज्यादा साज–सज्जा और प्रस्तुति पर ज़ोर दिया जाने लगा। अब राजनीति के बराबर या उससे कहीं ज़्यादा फिल्म, टीवी और खेलों को तवज्जो दी जाने लगी। हर अखबार ने खेलों का अलग पेज शुरू किया, फिल्म पर अधिक से अधिक सामग्री दी जाने लगी।

उदारीकरण की प्रक्रिया ने देश के सामाजिक जीवन पर गहरा असर डाला। एक नया मध्य वर्ग सामने आया जो कि काफी हद तक स्मृति–विहीन था और जो नई आर्थिक नीति के बूते संपन्न होने के सपने देखता था। बाज़ार के आगमन और सूचना क्रांति के आने के बाद उसके जीवन–मूल्य काफी बदले और इसी के साथ बदली उसकी रुचियां। नए–नए विदेशी चैनलों के आने से पूरी दुनिया से उसका नए सिरे से साक्षात्कार हुआ। पश्चिमी जीवन के बारे में इतने दिनों तक वह केवल 'सुनता' था अब 'देखने' भी लगा। मोबाइल ने उसके संवाद और उसकी भाषा पर गहरा असर डाला। यह वह दौर है जब बहुत से भ्रम टूट गए। यह साफ़ हो गया कि राजनीति की जगह अर्थनीति लेने लगी है और आम जनता के भाग्य को बदलने में सरकार की भूमिका बड़ी ही सीमित है। वह अपनी नीतियां भी अपने दम पर बनाने को स्वतंत्र नहीं है और निजीकरण करना उसकी मजबूरी है। सरकारी नौकरियों की घटती संख्या से लोगों की सरकार से उम्मीदें और कम हो गईं। यह तय हो गया कि सरकार आरक्षण या इस जैसे कुछ प्रतीकात्मक उपायों के अलावा और कुछ नहीं कर सकती।

इस स्थिति ने राजनीति को हाशिए पर धकेला। एक के बाद एक होने वाले घोटालों और बेमेल गठबंधनों ने राजनेताओं के प्रति लोगों के मोहभंग को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता जैसे मूल्य अचानक अविश्वसनीय नज़र आने लगी। फिर यह भी समझ में आ गया कि सरकार चाहे किसी दल की हो, उदारीकरण से पीछे हटना किसी के लिए मुमकिन नहीं है। हिन्दी साहित्य का आलम यह रहा कि इतने बड़े हिन्दी क्षेत्र में एक कविता या कहानी संग्रह की एक हज़ार प्रतियाँ भी मुश्किल से बिकती रही। हिन्दी प्रदेश के इतिहासकार, समाजशास्त्री और

वैज्ञानिक भी गंभीर कार्य के लिए अंग्रेज़ी का प्रयोग करते रहे। विमर्श की भाषा हिन्दी नहीं बन सकी। हिन्दी भाषी राज्यों के नौजवानों ने धीरे–धीरे यह समझना शुरु किया कि इस नए दौर में रोज़गार की जो थोड़ी संभावनाएं पैदा हो रही हैं, उसके लिए अंग्रेज़ी ही नहीं, अंग्रेज़ियत भी ज़रूरी है। कम्प्यूटर हो या फैशन टेक्नोलॉजी या फिर दूसरे तकनीकि क्षेत्र, वहाँ तक अंग्रेज़ी ही पहुँचा सकती है। हिन्दी के ज़रिए वहां तक पहुंचना संभव नहीं है। नई पीढ़ी की इस मनोदशा को मीडिया ने बारीकी से समझा है।

इस पीढ़ी की स्थिति बड़ी विचित्र है। यह पूरी तरह अंग्रेज़ीदां भी नहीं है, क्योंकि इनका अधिकतर हिस्सा ऐसे आर्थिक वर्ग से आता है जो पब्लिक स्कूलों की शिक्षा का बोझ वहन करने में असमर्थ रहा है। लेकिन यह अंग्रेज़ी केन्द्रित या उससे परिचालित ग्लोबल संसार में पहुँचने को उत्सुक है या कहा जा सकता है कि वहां पहुँचना उसकी विवशता है। यह मानना भूल होगी कि ऐसे नौजवानों का समूह सिर्फ महानगरों तक सीमित है। महानगरों में पढ़ने के लिए छोटे–छोटे शहरों से आए युवाओं के अलावा कस्बों और गांवों तक में ऐसे नौजवान हैं जो केबल टीवी के विस्तार के बाद पूरी दुनिया को नई नज़रों से देख रहे हैं। ग्लैमर, खुलापन और समृद्धि की कहानियाँ उनके घरों में पहुँच गई हैं, इसलिए उनकी अपेक्षाएं बदल रही हैं। पिछले कुछ दशकों में बिहार और उ.प्र. के गांवों, कस्बों से बड़ी संख्या में लोगों का पलायन शहरों में हुआ है। अनेक परिवारों में शहरों से पैसा भी आया है और नये जीवन मूल्य भी। शहरी निम्न मध्यम वर्ग के लोगों ने निजी बैंकों से लोन के ज़रिए घर और मकान का सपना साकार किया है। उसे लगता है कि उसकी भावी पीढ़ी और भी संपन्न हो सकती है। उसके भीतर नए रहन–सहन के प्रति एक अद्‌भुत ललक पैदा हुई है। इसलिए वह समाज के सफल लोगों को मन ही मन आदर्श मानता है। सेलिब्रिटीज़ के जीवन के हर पहलू को वह जानने के लिए उत्सुक रहता है।

आज का मीडिया इन्हीं परिस्थितियों में बदल रहा है। वह आज की नई पीढ़ी को अंग्रेज़ी या अंग्रेजी की दुनिया से जोड़ने वाले पुल की तरह काम कर रहा है। वह उन्हें रोज़ी–रोज़गार से जुड़े मसलों, आधुनिक तकनीक, नए लाइफ स्टाइल के बारे में उन्हीं की भाषा में बता रहा है। राजस्थान से निकलने वाली एक हिन्दी बाल पत्रिका तो बकायदा बच्चों को अंग्रेजी सिखाने के लिए एक कॉलम चला रही है। कुछ अखबारों ने भी ऐसा किया है।

यही कारण है कि अखबारों में गंभीर राजनीति का हिस्सा लगातार कम हुआ है। अब क्रिकेट और अध्यात्म को संपादकीय पेज पर भी जगह मिलने लिगी है।

हिन्दी में एक स्वतंत्र आर्थिक अखबार निकालने का प्रयोग भले सफल न हुआ हो, मगर आर्थिक खबरें प्रमुखता से जगह पा रही है। खासकर ऐसी खबरें जो पाठकों के रोज़मर्रा के जीवन से जुड़ी हों। संपादकीय पेज तक का स्वरूप बदल गया है। अब तक मुख्य लेखों में राजनीति हावी रहती थी। पर अब अन्य विषयों का विस्तारीकरण हो गया है। यानी अब गंभीर विमर्श से ज़्यादा सूचना, मनोरंजन और टिप्स पर ज़ोर है। लेख और खबरों का आकार छोटा हो गया है, विज़युअल पर ज्यादा ज़ोर है। यानी मीडिया ने ज्ञान देने और किसी बहस को आगे बढ़ाने की भूमिका से अपने को अलग कर लिया है। सारे राष्ट्रीय और क्षेत्रीय अखबार इसी लाइन पर आगे बढ़ रहे हैं। अगर ये चीज़ें पाठकों को पसंद नहीं आती तो इन्हें अस्वीकार किया जाता। पर ऐसा नहीं हुआ है, बल्कि रीडरशिप के हाल के आंकड़े बताते हैं कि नए प्रयोगों को अपनाने वाले क्षेत्रीय अखबारों के पाठक बढ़े हैं।

ऐसे में यह कहना थोड़ी ज़्यादती है कि मीडिया जानबूझकर गंभीर खबरों और जनसमस्याओं की अवहेलना कर रहा है। ऐसी खबरें कम ज़रूर हुई हैं, पर उन्हें लंबे समय तक दबाना संभव नहीं है। मुश्किल यह है कि मोटे तौर पर उसका पाठक वह वर्ग है जो अपने शेष समाज से कटा हुआ है। वह सामूहिक जीवन से अलग-थलग एक सुखद भविष्य के सपने में लीन है। उसे अपने अलावा थोड़ी बहुत आसपास की चीज़ों में रुचि है। वह अपने मोहल्ले और शहर के अपराध के बारे में इसलिए जानना चाहता है कि वह खुद सचेत होकर चले। लेकिन दूर के गांवों में गरीबों पर हो रहे अत्याचार या शोषण की खबरें उसे उद्वेलित नहीं करतीं। उसे सब कुछ सुखद और गुलाबी ही चाहिए। वह शेष समाज की बहुत परवाह नहीं करता। इस गलाकाट प्रतियोगिता के दौर में वह सिर्फ़ उन्हीं चीज़ों के बारे में सोचता है जिनसे उसे सीधा लाभ हासिल होता है। वह विचार-विमर्श से इसलिए दूर रहता है क्योंकि उससे उसके जीवन में प्रत्यक्ष फायदा नहीं होता। उसके इसी चरित्र के अनुकूल मीडिया को भी बदलना पड़ा है। आज के प्रतिस्पर्द्धा और गहरे व्यावसायिक दबाव के दौर में यह आसान नहीं रह गया है कि मीडिया अपनी इस सीमा का अतिक्रमण करे। लेकिन फिर यह दोहराना होगा कि समाज की विभिन्न अंतर्धाराएं मीडिया को गहरे अर्थों में प्रभावित करती हैं। जो दिख रहा है, वही अंतिम नहीं है। संभव है, आने वाले समय में इस मध्यवर्गीय समाज से परे का तबका देश के सामाजिक जीवन के केन्द्र में एक नए तरीके से दखल दे। तब मीडिया को भी बदलना पड़ सकता है। ❐

वृद्ध माता-पिता के साथ दुर्व्यवहार, उनकी उपेक्षा एवं शोषण

एक मूक रुदन

सितम्बर 2008 के प्रथम सप्ताह में एक हृदय विदारक घटना हुई थी। नई दिल्ली निवासी एक 73 वर्षीय वृद्धा को उसका छोटा पुत्र हरिद्वार में गंगा स्नान के बहाने से मार्ग में पड़ने वाले मोदीनगर कस्बे के जंगल में निराश्रित छोड़ गया। वृद्धा भटकती हुई उस नगर के एक गुरुद्वारे में पहुँच गई। मीडिया में बात उछलने पर बड़ा बेटा, जो दिल्ली में ही रह रहा था किन्तु वर्षो से माँ की कोई खोज खबर नहीं लेता था, इस वृद्धा को साथ लिवा ले गया।

उसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत है यह लेख–

कबीर ने कहा था गुरु ईश्वर से भी बड़ा है क्योंकि वह हमें ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास ने बताया गुरु से भी बड़ा पिता व उससे बड़ी माता है। मानस की इन पंक्तियों पर ध्यान दें:–

प्रात काल उठि कै रघुनाथा।
मात-पिता गुरु नावहिं माथा।।

भगवान राम नित्य प्रात: उठकर पहले माता फिर पिता व अन्त में गुरु को प्रणाम करते थे। यही थी हमारी प्राचीन परम्परा जहाँ बचपन से ही बड़ों के समक्ष विनम्र रहने एवं उनका सम्मान करने के संस्कार दिये जाते थे। तभी भगवान राम अपने सुखों की परवाह न करके अपनी सौतेली माता एवं पिता का वचन निभाने हेतु आनन्द से वन चले गये। किन्तु आज के युग में पश्चिमी सभ्यता एवं विचारधारा से प्रभावित तथाकथित आधुनिक कहे जाने वाले अधिकांश लोग इसे रूढ़िवादिता, पुराणपंथी व पिछड़ापन कहते हैं। यह सभ्यता व्यक्तिवादी है जिसमें व्यक्ति का महत्व ही सर्वोपरि है। इस विचारधारा के अनुसार परिवार या संयुक्त परिवार का कोई महत्व नहीं है। ऐसी अवस्था में यदि बच्चे

बड़े होकर अपने माता–पिता की उपेक्षा, उनका अपमान या शोषण करने लगें तो इसमें अस्वाभाविक क्या है।

माता–पिता के उत्पीड़न एवं शोषण के कुछ मामले तो दिल दहला देने वाले हैं। एक ऐसे ही मामले में एक पिता ने अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर अपनी बेटी के नाम एक फ्लैट इस इरादे से ले लिया कि वे उसके साथ रहेंगे। प्रारम्भ में माँ घर का सारा काम संभालती व अपनी बेटी के बच्चों की देखभाल करती। माँ को दमा की बीमारी थी। कुछ दिन बाद उनका देहान्त हो गया। अब पिता बेटी के लिए बोझ बन गया। बेटी ने उनसे कहा कि वे पंडित के साथ श्राद्धों में खाना खाया करें। यह दुर्व्यवहार वे सहन नहीं कर सके व कुछ दिन में ही वे बीमार पड़ गये व उनका देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु पर कोई आंसू बहाने वाला नहीं था।

माता–पिता के प्रति दुर्व्यवहार को कई श्रेणियों में बांटा जा सकता है। सर्वप्रथम उनकी उपेक्षा करना। इसमें उनकी आवश्यकताओं पर उचित ध्यान न देना आता है। दूसरी श्रेणी में अपमान व उत्पीड़न आता है। यह अधिक कठोर व्यवहार है। इसमें माता–पिता द्वारा किये जाने वाले किसी कार्य का विरोध करके कटु शब्दों में उन्हें अपमानित करना अथवा शारीरिक रूप से उन्हें हानि पहुँचाना है। इसमें कभी धोखा देकर उनकी सम्पत्ति अपने नाम करा कर बाद में उन्हें घर से निकाल दिया जाता है।

आजकल प्राय: पति–पत्नी दोनों बाहर जाकर काम करते हैं। ऐसी अवस्था में उनके बच्चों तथा घर की देखभाल के लिए किसी की आवश्यकता होती है। अत: पति या पत्नी के माता–पिता को यह कहकर बुला लिया जाता है कि वृद्धावस्था में उनका अकेले रहना उचित नहीं। अपने बच्चों के पास आकर रहने में बच्चे उनका

उचित ध्यान रख पायेंगे। किन्तु बच्चों के पास आकर पता चलता है कि उनके ऊपर घर की सारी ज़िम्मेदारी डाल दी गई है जिसे पूरा करना उनके सामर्थ्य के बाहर है। यह व्यवहार शोषण की श्रेणी में आता है। ऐसे ही एक मामले में एक पुत्री ने अपने माता–पिता को अमेरिका यह कहकर बुलाया कि वहाँ अच्छी सुख सुविधाएं होंगी। किन्तु वहाँ पहुँचने पर उन्होंने पाया कि उनकी स्थिति एक नौकर की भाँति है। बाद में अपने एक मित्र की सहायता से बड़ी कठिनाई से वे भारत लौट पाये।

दुर्व्यवहार के कई कारण हो सकते हैं। इनमें से एक प्रमुख कारण माता के आर्थिक रूप से बच्चों पर निर्भर होना है। माता–पिता की आवश्यकताओं पर धन खर्च करने पर उन्हें अपने खर्चे में कमी करनी पड़ती है। यह उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे तनाव व गुस्से से भरे रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में ज़रा सी बात पर वे माता–पिता को बुरा–भला कहकर अपमानित करते हैं। कभी–कभी पिता की अथवा पैतृक सम्पत्ति को जल्दी से जल्दी प्राप्त करने के लिए वे उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण एक अलग कारण है। उनमें अच्छे संस्कारों का न होना। अच्छे संस्कार तथा बड़ों के प्रति आदर की भावना होने पर बच्चे आर्थिक रूप से बहुत सम्पन्न न होते हुए भी अपने माता–पिता की सुख–सुविधा का समुचित ध्यान रखते हैं तथा उन्हें पूरा सम्मान देते है। किन्तु ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ पर बेटा तो अच्छे संस्कार का है किन्तु उसके विवाह होने पर आने वाली बहू को अच्छे संस्कार नहीं मिले होते। ऐसी अवस्था में वह अपने सास व श्वसुर का आदर नहीं करती तथा अपने पति से ज़रा–ज़रा सी बात की शिकायत करके उसे अपने माता–पिता का समुचित ध्यान रखने से रोकती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इसका उपाय क्या है। साधारणतया इसके दो उपाय सुझाये जाते हैं। प्रथम ऐसे उपेक्षित व्यक्तियों के लिए वृद्धावस्था की व्यवस्था करना है। पश्चिमी देशों में सरकार द्वारा ऐसे आश्रम की व्यवस्था की जाती है जिनमें वरिष्ठ नागरिकों के रहने एवं उनकी अन्य सुख सुविधाओं का पूर्ण प्रबन्ध होता है। किन्तु भारत में ऐसे बहुत कम आश्रम हैं। जो खोले भी गये हैं उनमें सुविधायें बहुत कम हैं। स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा अवश्य ऐसे कुछ आश्रमों की व्यवस्था की गई है जिनमें कुछ धनराशि लेकर वरिष्ठ नागरिकों के लिए पर्याप्त सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। दूसरा सरकार द्वारा कानून बनाकर ऐसे उपेक्षित व्यक्तियों को गुज़ारा भत्ता देने के लिए उनके बच्चों को बाध्य करना है। इसमें बड़ी कठिनाई है। सर्व प्रथम ऐसे उपेक्षित व्यक्तियों के पास धन की वैसे भी कमी रहती है। वृद्धावस्था के कारण उनकी शक्ति भी कम हो जाती है एवं समय बहुत लगता है। कानूनी लड़ाई में इन

तीनों की आवश्यकता होती है। इनके अतिरिक्त क्या कोई कानून एक बेटे को बाध्य कर सकता है कि वह अपने वृद्ध माता–पिता से मिलने जाय व उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति संवेदना के साथ करे। इस प्रकार इस उपाय से विशेष राहत ऐसे वरिष्ठ नागिरकों को नहीं मिल पाती।

वास्तव में यदि हम समस्या का हल चाहते हैं तो हमें उसके मूल कारण को पकड़ना होगा। हम सदा अधिकार की बात करते हैं। अधिकार की भावना से झगड़े व तनाव बढ़ते हैं। समस्या और भी अधिक उलझ जाती है। अत: कर्तव्य की भावना को जगाना आवश्यक है। यदि बच्चों में अपने बड़ों के प्रति आदर सम्मान एवं कर्तव्य की भावना बचपन से जगाई जाये तो बड़े होकर वे माता–पिता से दुर्व्यवहार करना तो दूर रहा वे उसका विचार तक मन में नहीं लाएँगे। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि नई पीढ़ी के अन्दर कर्तव्य की यह भावना किस प्रकार जाग्रत की जाये। इसके लिए दो रास्ते हैं। दोनों में साथ–साथ प्रयास आरम्भ करना होगा। पहला यह कि माता–पिता को अपने बच्चों में बड़ों के प्रति आदर व सम्मान की भावना बचपन से ही डालनी होगी। इसके लिए उन्हें स्वयं बड़ों का आदर करके उदाहरण प्रस्तुत करना होगा। दूसरा हमें अपनी शिक्षा प्रणाली में कुछ सुधार करना होगा। शिक्षा प्रणाली में नैतिक शिक्षा को एक विषय के रूप में पढ़ाना ही पर्याप्त न होगा। प्रारंभिक शिक्षा से ही प्राणायाम व ध्यान के प्रयोग आरम्भ करने होंगे। इसके द्वारा मस्तिष्क का भावनात्मक विकास होगा एवं बच्चों में सहन–शक्ति बढ़ेगी तथा उनमें बड़ों के प्रति आदर व कर्तव्य का भाव उत्पन्न होगा।

इस सम्बंध में बड़ों के लिए भी अपने कर्तव्य का पालन करना आवश्यक है। उन्हें अपनी संतान से अनावश्यक सहायता की आशा नहीं करनी चाहिए। उन्हें अपनी युवावस्था से ही ऐसी योजना बनाकर चलने की आवश्यकता है जिससे वे जीवन भर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर रह सकें।

कुछ लोग कहते है कि अब कुछ नहीं हो सकता। ऐसे लोग निराशावादी हैं। वे धारा में बहते हुए डूब भले ही जायें किन्तु प्रयास नहीं करना चाहते। आज भी भारतीय समाज में जितने मामले दुर्व्यवहार के मिलेंगे उनसे अधिक मामले ऐसे हैं जिनमें संताने कर्तव्य की भावना से अपने माता–पिता की सेवा करती हैं एवं उनकी सुख–सुविधा का पूर्ण ध्यान रखती हैं। ***–एक भुक्त भोगी***

❐

विद्याधर सूरजप्रसाद नायपालः

दमित इतिहास का दास्तानगो

❑ देवेन्द्र इस्सर

भारतीय मूल के ब्रिटिश लेखक विद्याधर सूरजप्रसाद नायपाल को जब 11 अक्टूबर को वर्ष 2001 के नोबेल पुरस्कार के लिए चुना गया तो दुनिया–भर के लेखकों और बुद्धिजीवियों में हंगामा बरपा हो गया–पुरस्कार को लेकर भी और नायपाल के विचारों एवं व्यक्तित्व को लेकर भी। ऐसा ही विवाद उस समय हुआ था जब नोबेल पुरस्कार के लिए रूसी लेखक बोरिस पास्तरनाक के नाम की घोषणा की गई थी और यहाँ तक कह दिया गया था कि ''पास्तरनाक सूअर है, जो उस स्थान को गन्दा करता है जहाँ वह खाता है और रहता है। उसने वह किया है जो एक सूअर भी नहीं कर सकता।'' नायपाल के नाम की घोषणा उस समय हुई जब इतिहास रणभूमि बनता जा रहा है और भूमियाँ रक्तरंजित हो रही हैं।

नायपाल 98वें नोबेल लारियेट हैं। ये सातवें भारतीय या भारतीय मूल के व्यक्ति हैं जिन्हें यह पुरस्कार दिया गया है। साहित्य के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ टैगोर (1913) के बाद वे दूसरे भारतीय नोबेल पुरस्कार विजेता हैं। इससे पूर्व इन्हें कई अन्य प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं, जिनमें उनकी पुस्तक 'इन अ फ्री स्टेट' के लिए बुकर पुरस्कार (1971) भी शामिल है। 1990 में इन्हें 'नाइटहुड' से भी सम्मानित किया गया। कहा जाता है कि नोबेल पुरस्कार के लिए उनके नाम की चर्चा करीब दो दशकों से चल रही थी। स्वीडिश अकादमी के अनुसार, ''नायपाल प्रचलित फैशनों और मॉडलों से कतई प्रभावित नहीं हुए बल्कि उन्होंने वर्तमान साहित्यिक विधाओं को इस प्रकार वैयक्तिक स्टाइल में ढाल दिया है कि कथा–साहित्य और गैर कथा–साहित्य का परम्परागत भेद गौण महत्व का हो गया है।''

जब उनकी पत्नी नादिरा ने बार–बार फोन मिलाने के बाद उन्हें पुरस्कार की खबर दी तो उनके आलोचकों ने इसको स्टण्ट बताया क्योंकि उनके नए उपन्यास 'हाफ अ लाइन' (2001) के ब्लर्ब में छप चुका था कि उन्हें प्रत्येक बड़ा पुरस्कार मिल चुका है, सिवाय नोबेल के। लेकिन स्वीडिश अकादमी के प्रमुख होरेस इंगडहल ने कहा कि उन्हें वाकई आश्चर्य हुआ कि वह यह महसूस करते हैं कि एक लेखक

के रूप में वह सिवाय अपने किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करते। नायपाल ने कहा कि मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं इस सम्मान की अपेक्षा नहीं कर रहा था। यह भारत तथा इंग्लैण्ड के लिए महान् उपलब्धि है। इंग्लैण्ड मेरा घर है। भारत मेरे पुरखों की मातृभूमि है। लेकिन त्रिनिदाद में पोर्ट ऑफ स्पेन में 17 अगस्त, 1932 को दुबे परिवार में जन्मे नायपाल ने त्रिनिदाद का नाम नहीं लिया जिसके कारण त्रिनिदाद के लेखकों ने तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट की।

नायपाल ने 1950 में 18 वर्ष की आयु में त्रिनिदाद छोड़ दिया था और इंग्लैण्ड आकर बस गए थे। उन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की और फिर इंग्लैण्ड के ही होकर रह गए। वह इस विस्थापन से प्रसन्न हैं। ''औपनिवेशक त्रिनिदाद में रहना मेरे लिए दु:स्वप्न था।'' उन्हें संतुलित व्यवस्थित समाज रास आता है। अविकसित या अर्धविकसित देशों का पिछड़ापन उन्हें पसंद नहीं जबकि इंग्लैण्ड को वे महान् परम्पराओं वाला देश मानते हैं। लेकिन उनके हाल के लेखों से यह संकेत भी मिलते हैं कि ब्रिटिश समाज भी पतन के कगार पर है। यह है वह पृष्ठभूमि जिसमें नायपाल के विस्थापन की व्यथा तथा विवादित विचारों एवं विक्षुब्ध व्यक्तित्व लेकिन संवेदनशील लेखक को समझा जा सकता है।

भारत तथा कई अन्य देशों के 'लिब्रल', 'सेक्युलरिस्ट', वामपंथी तथा मूलवादी इस्लामिस्ट लेखकों और बुद्धिजीवियों ने नायपाल को पुरस्कार दिए जाने की तीव्र निन्दा की है। उन्होंने इसे इस्लाम–विरोधी अमेरिकी साम्राज्यवादी साजिश तक कह डाला। दूसरी तरफ हिन्दुत्ववादियों ने हर्षोल्लास से इसका स्वागत किया और इसे सही दिशा में सही कदम कहा। पुरस्कार की आलोचना करते हुए यह भी कहा गया कि उसे यह पुरस्कार संसार–भर के मुस्लिम समुदाय को अपमानित करने की सोची–समझी नीति के तहत दिया गया है। इसके प्रमाण के लिए प्रश्न उठाया गया कि आखिर इसी समय यह घोषणा क्यों की गई ? उत्तर स्पष्ट है कि इस समय संसार भर में विशेष, रूप से 11 सितम्बर को अमेरिका में आतंकवादी हमले के पश्चात् पश्चिमी देशों ने जो इस्लाम–विरोधी अभियान शुरू किया है, यह पुरस्कार उसी का एक अंग है। क्या इसका कारण तथाकथित 'सभ्यताओं का संघर्ष' तो नहीं ?

अमेरिकी 'षडयंत्र' तथा नायपाल का 'अपराध' इस तथ्य से भी सिद्ध हो जाता है कि 1991 में जब अमेकिा ने इराक पर बमवारी की थी (एक और इस्लाम–विरोधी साजिश) तो अमेरिकी साप्ताहिक 'न्यूज़वीक' के आवरण पर नायपाल का चित्र छपा था और उसे इस्लाम के विशेषज्ञ के रूप में प्रस्तुत किया गया था और अब जब अफ़गानिस्तान पर अमेरिकी बमबारी शुरु की गई तो उसे नोबेल पुरस्कार दिया

जा रहा है। पुरस्कार की यह टाइमिंग अहम है। इसलिए जब यह कहा जाता है कि उसका नाम पहले भी कई बार पुरस्कार सूची में शामिल था और उसे नहीं मिला तो इसका कारण यह था कि यह उपयुक्त टाइम नहीं था। लेकिन इसके बरअक्स यह भी तो कहा जा सकता है कि गत कई वर्षों से नोबेल पुरस्कार समिति की जो नीति रही है कि 'राजनीतिक तौर पर सही' (पॉलिटिकली करेक्ट) विचारधारा वाले लेखकों को ही पुरस्कार दिया जाए, इसीलिए नायपाल को मान्यता नहीं मिली और दारियो फो तथा खोसे सरमगो जैसे वामपंथियों को सम्मानित किया गया क्योंकि स्वीडिश अकादमी तीसरी दुनिया के लिब्रल, रेडिकल लेखकों को नोबेल पुरस्कार देकर अपनी निष्पक्ष तथा उदार न्यायसंगत छवि को स्थापित करना चाहती है।

प्रश्न यह भी किया गया कि यदि नायपाल वाकई निष्पक्ष लेखक हैं तो उन्होंने हिन्दुत्वादी फासीवाद की आलोचना क्यों नहीं की ? खैर, यह प्रश्न तो इन आलोचकों से भी पूछा जा सकता है कि जब आप हिन्दुत्ववादी फासीवाद की निन्दा करते हैं तो मुस्लिम मूलवाद पर मौन क्यों धारण कर लेते हैं ? लेकिन तथ्य यह भी है कि जहाँ 'ऑर्गनाइजर' ने नायपाल के इस्लाम सम्बन्धी विचारों को उद्धृत किया है, वहाँ 'पाञ्चजन्य' ने अपने सम्पादकीय के अतिरिक्त दो पृष्ठों में उसके साहस की प्रशंसा करते हुए लिखा है। नायपाल ने अभी तक जो लिखा है वह हिन्दू मानस की चिन्ताओं को प्रकट करता है। अयोध्या आन्दोलन के दौरान अपने एक साक्षात्कार में नायपाल ने बाबरी ढाँचे के ध्वंस को हिन्दू क्षोभ, जिसे सदियों से दबाकर रखा गया है, का प्रकटीकरण कहा है।

वामपंथी हों या मज़हबी मूलवादी या सांस्कृतिक राष्ट्रवादी, नव इतिहासवादी हों या राजनीतिज्ञ या सांस्कृतिक अध्ययनों के अनुयायी–सबकी समस्या यह है कि वे साहित्य के बारे में एक ही रवैया रखते हैं–कृति का सामयिक ऐतिहासिक परिवेश क्या है। वे टेक्स्ट पर कण्टेक्स्ट को हावी कर देते हैं तथा साहित्यिक कृति का मूल्यांकन अपनी–अपनी विचार पद्धति के आधार पर करते हैं। जब व्यक्ति, वस्तुएँ एवं व्यवस्थाऐं स्याह तथा सफेद वृत्तों में विभाजित कर दी जाती हैं तो इस प्रकार का रिफ्लेक्स एक्शन और रिडक्शनिज़्म कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि नोबेल पुरस्कार हो या अन्य कोई पुरस्कार वैचारिक या वैयक्तिक पूर्वाग्रहों से प्रभावित नहीं होता। नोबेल पुरस्कार समिति के पूर्व सचिव लार्स जिलंटसेन ने अपनी नई पुस्तक में स्वीकार किया है कि किस प्रकार समिति के सदस्य व्यक्तिगत विद्वषों तथा अन्य दबावों के कारण समिति की राय को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।

बहरहाल वी.एस. नायपाल को नोबेल पुरस्कार मिल ही गया। कवि एवं कला–समीक्षक कैरोल बार्ग ने सही कहा है–''मुझे लगता है कि नायपाल को यह पुरस्कार बहुत पहले मिल जाना चाहिए था। वह कैरीबियन हैं। यह अलग बात है कि वह इसे (अपने कैरीबिनय होने को) पसन्द करते हैं या नहीं।''

नायपाल की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वे जब भी किसी व्यक्ति, व्यवस्था, विश्वास या सभ्यता के बारे में लिखते हैं तो कोई न कोई विवाद खड़ा हो जाता है। वे लेखकों को भी नहीं बख्शते। वे कहते हैं: ''मुझमें ऊब पैदा करता है। वह महज गपशप है।'' ''मेरे लिए जेम्स ज्वायस में क्या है। उसके पास कहने के लिए कुछ नहीं। वह ई.एम.फारेस्टर की समलैंगिकता पर भी प्रहार करते हैं। सलमान रूश्दी पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा, ''कत्ल साहित्यिक आलोचना का अति रूप है।'' वे गाँधी को भी अनपढ़ मानते हैं। वे गैर–साहित्यिक विषयों पर भी अपनी निर्भीक बेबाक राय व्यक्त करते हैं, जिसके कारण हर कोई उनसे नाराज़ है। इनके आलोचकों का कहना है कि उनके विचार विषाक्त ही नहीं, विवादास्पद एवं हास्यास्यपद भी हैं। परिणाम यह हुआ कि वे बुद्धिजीवी, जो उदार माने जाते हैं, भी उनकी हिमायत में बोलने में संकोच करते हैं।'' आखिर नायपाल क्या कहते हैं:–

इस्लाम–''मेरे विचार में इस्लाम का पश्चिम–विरोध इसलिए है कि पश्चिमी देशों और उनके अपने देशों में बड़ा प्रौद्योगिक तथा वैज्ञानिक फासला है। दरअसल वे अमेरिका से अभिभूत हैं और इसे ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं। उनका रवैया बहुत ही दुविधापूर्ण है। यह प्यार और नफरत का रिश्ता है।'' ईरानी क्रान्ति के दौर में नायपाल ने पूर्व और दक्षिण के कई इस्लामी देशों का दौरा किया। उन्होंने अपने संस्मरणों को अपनी पुस्तक 'अमंग दी बिलीवर्स' (1981) में प्रकाशित किया है। 1996 में वे अपने शोध–कार्य के लिए पाकिस्तान भी गए, जिसका वर्णन उन्होंने 'बीयाण्ड बिलीफ: इस्लामिक इक्सकर्शन अमंग दि कन्वार्टिड' (1998) में किया है जो पहली पुस्तक की ही अगली कड़ी है। इन यात्राओं में वे स्वयं कम बोलते थे, दूसरों को अधिक बोलने का अवसर प्रदान करते थे, यह बताने के लिए कि उनके पश्चिम–विरोधी विचार कितने मूलवादी, दकियानूसी, अर्धशिक्षित, पुनरुत्थानवादी तथा खोखले हैं।

नायपाल के विचार में गैर–अरब देशों में इस्लाम सांस्कृतिक उपनिवेशवाद का ही एक रूप है जिसने इन देशों की संस्कृति को बंजर बना दिया है। इन देशों में प्रचलित मज़हबी उत्थानवाद को अभी रेनेसंस की प्रक्रिया से गुज़रना है। इस्लाम का दुनिया भर में एक विनाशकारी प्रभाव रहा है। इसके दुष्प्रभावों ने उन लोगों के

धार्मिक/पारम्परिक मूल्यों को झकझोर दिया है जिन्होंने इस्लाम कबूल किया है। क्योंकि इस्लाम मूलत: एक अरब–मज़हब है इसलिए तमाम गैर–अरब मुसलमान धर्मांतरण का परिणाम है। धर्मांतरण के कारण इन लोगों को अपने पूर्व–इस्लामिक अतीत, अपने इतिहास और सांस्कृतिक विरासत को रद्द एवं नष्ट करना पड़ता है। यह एक ऐसा परिवर्तन है जिससे सारा संसार त्रस्त है। यह लोग एक फेंटेसी को निर्मित करते हैं, जिससे वे यह सिद्ध कर सकें कि वे कौन और क्या हैं। इस धर्मांतरण के कारण इन देशों में न्यूरॉसिस तथा निहिलिज़्म के तत्त्व उत्पन्न होते हैं जिसके फलस्वरूप इन देशों के लोगों को आसानी से उत्तेजित किया जा सकता है। इस प्रकार इस्लाम को राजनीतिक शोषण और दमन के लिए धुआँ–दीवार के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। पाकिस्तान का सपना है कि एक दिन मुस्लिम पुनरुत्थान होगा और वे दिल्ली की जामा मस्जिद में नमाज़ पढ़ेंगे। पुरस्कार की घोषणा के फौरन बाद 'संडे टेलिग्राफ़' के साथ एक साक्षात्कार में नायपाल ने कहा कि अफगानिस्तान सभ्यता को ध्वस्त करने वाला देश है। तालिबान मिलीशा के विनाशक कीड़े को कुचल देना चाहिए। इन्होंने तेईस मिलियन लोगों को दहशत और विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है जैसा कि वे अपनी सूरत में दिखते हैं, वे इससे भी अधिक भयंकर हैं। वे देश जो आतंकवादियों को संरक्षण प्रदान करते हैं उनकी पूँजी तथा सम्पत्ति को उस समय तक ज़ब्त कर लेना चाहिए जब तक कि वे अपनी भूमि को आतंकवाद से मुक्त नहीं कर देते।

भारत–नायपाल जब पहली बार भारत आए तो वे पूर्वी उत्तर प्रदेश में अपने पुश्तैनी गाँव भी गए। उन्होंने अपनी कई पुस्तकों में भारत के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। 'एन एरिया ऑफ़ डार्क्नेस' (1964) में उन्होंने भारत के प्रति अपनी वितृष्णा प्रकट करते हुए भारत के लोगों की अकर्मण्यता, अराजकता, गतिहीनता, गन्दगी और उनके आलस्यपूर्ण जीवन तथा रस्मो–रिवाजों पर गहरा प्रहार किया है। भारत के बुद्धिजीवियों को इस पुस्तक से इतना सदमा पहुँचा कि उन्होंने इसे मिस कैथेरीन मेयो की मदर इण्डिया की भाँति सफाई दरोगा की रपट कहकर इसकी आलोचना की। उनके कई विचारों से उनकी भारत से निराशा स्पष्ट प्रकट होती है। 'बिन्दु का मतलब है कि मेरा मस्तिष्क खाली है।' (हिन्दू नारी की बिन्दी के बारे में), 'भारतीय होने का अभिप्राय है और यह भारतीय लेखन के बारे में भी सही है कि वह बिना इतिहास के शून्य में कार्यरत दिखाई देता है' (2001)। 'गांधी अपनढ़ था। वह कभी वैचारिक नहीं था। आज उसका कोई संदेश नहीं' (1991)।' 'मैं भारतीयों के लिए नहीं लिखता। वैसे भी वे मुझे नहीं पढ़ते। मेरा लेखन एक उदार सभ्य पश्चिमी देश में ही संभव है।' (1979)। 'कलकत्ता को एक मूर्खतापूर्ण राजनीतिक विचारपद्धति द्वारा, जो कि पूर्णतया असफल हो चुकी है, नष्ट किया जा

रहा है। (कलकत्ता में) मार्क्सवादी विचारधारा मूलवाद का ही एक रूप है।' कुछ वर्षों पश्चात् नायपाल जब फिर भारत आए तो उन्होंने भारत के अपने अनुभवों पर दो पुस्तकें और लिखीं–'इण्डिया अ वूंडिड सिविलाइज़ेशन' (1977) और इण्डिया: अ मिलियन म्यूटिनीज़' (1990)। 'भारत: एक आहत सभ्यता' भारतीय जीवन और दर्शन पर एक महत्वपूर्ण गहन चिन्तन है। उनके विचार में भारतीय संस्कृति को एक हज़ार वर्षों के बाहरी आक्रमण और हिंसात्मक प्रहार भी नष्ट नहीं कर सके। एक प्राचीन परम्परा–संपन्न देश ही अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण रख सकता है। भारत की संस्कृति में वे तत्व मौजूद हैं जो ईसाइयत और इस्लाम में दिखाई नहीं देते। उनके विचार में हिन्दू ईथॉस भारत का सत्य है। इसे उन सभ्यताओं से विक्षत होना पड़ा है जो इस इथॉस से बाहर हैं। भारत के प्रति उनके रवैये में जो तबदीली आई है, इसके कारण सेक्युलरिस्ट बुद्धिजीवी उन्हें हिन्दुत्ववादी घोषित करते हैं।

नायपाल ने कहा है कि आज मुझे ऐसा दिखाई देता है कि भारतीय अपने इतिहास के प्रति सजग हो रहे हैं। चालीस वर्ष पूर्व भारतीय इतने बौद्धिक नहीं थे कि वे मेरी पुस्तकों को पढ़ सकें और उनका मूल्यांकन कर सकें। लेकिन गत कुछ वर्षों में भारत में सुधार आया है। उन्होंने मेरी पुस्तकें स्वीकार कर ली हैं। लेकिन साथ ही यह भी कह दिया है कि इस दृष्टि परिवर्तन में मैंने भारत की सहायता की है। अपनी पुस्तक 'भारत: एक आहत सभ्यता' के आलोचकों को यह कहकर डिसमिस कर दिया कि उनका क्रोध अज्ञानता और अनभिज्ञता का परिचायक है। शायद इसीलिए यह कहा गया कि भारत के प्रति नायपाल का रवैया सीज़ोफ्रीनिक है। नायपाल स्वयं स्वीकार करते है कि मैं भारत के बहुत निकट और बहुत दूर हूँ, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि मैं केवल दृश्य देखने के लिए यात्राएं नहीं करता। यही कारण है कि नायपाल को एक 'भयानक बौद्धिक आपदा' कहा गया और कहा गया कि वह 'एक गम्भीर बौद्धिक दुर्घटना' का शिकार हो गया है। लेकिन उसकी आईना–सी शफाफ साफगोई से उत्पन्न अपराध–बोध से बचने के लिए लोग उसे निरन्तर निन्दा का निशाना बनाते रहे हैं।

विस्थापित व्यक्ति, विभाजित संस्कृति: नायपाल का रचना–संसार

नायपाल ने अपनी रचना–यात्रा 'दि मिस्टिक मैसर' (1957) से शुरु की। इस पर इस्माइल मर्चेंट फिल्म भी बना रहे हैं। उनके उपन्यास 'अ हाउस फॉर मिस्टर बिस्वास' (1981) ने लोगों को चौंका दिया। इस उपन्यास को उस समय की सर्वश्रेष्ठ कृति स्वीकार किया गया और कहा गया कि यदि भारतीय डायस्पोरा का कोई प्रामाणिक वैयक्तिक एवं सांस्कृतिक दस्तावेज़ है तो वह उपन्यास है। यह उपन्यास नायपाल ने अपने विस्थापित पिता के बारे में लिखा है जो एक लेखक

बनना चाहते थे। यह कृति एक विराट् फलक पर भारतीय प्रवासियों की व्यथा–गाथा है जो अपनी जड़ों के उन्मूलन की पीड़ा को भोग रहे हैं। नायपाल ने 26 पुस्तकें लिखी हैं और 2001 में प्रकाशित उनके उपन्यास 'हाफ़ अ लाइफ़' को उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति माना जा रहा है। उनका यह प्रथम उपन्यास है, जिसकी घटनाभूमि भारत है और जो विभाजित व्यक्ति की ही नहीं, विभाजित समाज और सभ्यता की भी दर्दनाक दास्तान है। नायपाल का यह पहला उपन्यास है, जिसमें उन्होंने चार दशकों से सृजनात्मक लेखन में पहली बार सेक्स विषयक वर्णन किया है। फारुक ढोंडी को अपने एक साक्षात्कार में नायपाल ने कहा कि पहली बार मुझे अपने जीवन में यौन–तुष्टि का अनुभव हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है।

नायपाल एक ऐसे संसार की रचना करते हैं जिसकी नैतिक एवं आध्यात्मिक अनिश्चितताओं के हम इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि हम अब इसके मूक दर्शक बनकर रह गए हैं। यह ऐसी विषम परिस्थिति है, जिसमें से व्यक्ति को ही नहीं, समुदायों और राष्ट्रों को भी गुज़रना पड़ता है। नायपाल अपने पात्रों तथा पाठकों से ऐसी सहानुभूति और अन्तरंगता दर्शाते हैं जो बहुत ही कम लेखकों को नसीब होती है। एक प्रेस साक्षात्कार में जब उनसे पूछा गया कि क्या वे अब विशुद्ध उपन्यास लिखेंगे तो उन्होंने उत्तर दिया कि मुझे अब यह समझ नहीं आता कि मनगढ़ंत कहानियाँ लिखना या पढ़ना इतना महत्वपूर्ण क्यों है। दो वर्ष बाद भारत आने पर उनसे जब यही प्रश्न पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया, ''मुझ पर बहुत दबाव है। मैं एक राजनैतिक परीकथा लिख सकता हूँ।''

हाल ही में नायपाल की प्रामाणिक जीवनी 'नायपाल्स ट्रूथ' प्रकाशित हुई है, जिसे लिलियन फेडर ने लिखा है। इस पुस्तक में लेख के पीछे उस कलाकार को 'अनावृत्त' किया गया है जिसने बौद्धिक जगत् में इतनी राजनीतिक गर्मी उत्पन्न कर दी है कि असली नायपाल की छवि धूमिल हो गई है। इस पुस्तक ने एक बार फिर रचनाकार नायपाल और राजनीति के फासले के महत्व को समझाते हुए इस बात पर बल दिया है कि हमें नायपाल को एक सृजनात्मक कलाकार के रूप में देखना चाहिए। स्वयं नायपाल ने कहा है कि जो कुछ भी मूल्यवान है वह मेरी पुस्तकों में है और मैं पुस्तकों का सारांश हूँ। ❑

–बी–3/153, जनकपुरी, नई दिल्ली–110058

क्या अब पाती नहीं आयेगी?

❑ डॉ. अजित गुप्ता

अभी वरिष्ठ साहित्यकार गिरिराज किशोर द्वारा सम्पादित पत्रिका 'आकार' को मैं पढ़ रही थी, उसमें लाई भिक्खु पारीख की 'ओसामा बिन लादेन बनाम महात्मा गाँधी' काल्पनिक पत्र-संवाद के माध्यम से लिखी रचना प्रकाशित की गयी है। एक तरफ लादेन का इस्लामाबाद बनाम हिंसावाद है तो दूसरी तरफ गाँधी का अहिंसावाद है। दोनों ने अपनी बात पत्रों के माध्यम से कही है। एक ने हिंसा की वकालत की है तो दूसरे ने अहिंसा का मार्ग ही श्रेष्ठ बताया है। लादेन के रूप में लेखक ने अमेरिका और ईसाइयत की मंशा को प्रकट किया है, इसी कारण इस्लामी साम्राज्यवाद को भी विस्तार देने एवं उसे पुन:स्थापित करने का तर्क प्रस्तुत किया है। पत्रों के माध्यम से लेखक ने एक सशक्त अभिव्यक्ति पाठकों को उपलब्ध कराई है। इसी प्रकार पत्रिका में अज्ञेय के कुछ पत्र भी प्रकाशित किए गए हैं। पत्रों को पढ़ने के बाद मन में पत्र-शैली के प्रति विस्मृत प्रेम उमड़ पड़ता है, लेकिन वर्तमान में पत्र-लेखन के अभाव के कारण कहीं एक शून्य भी उभर आता है। हमारे आपसी रिश्तों का शून्य, अभिव्यक्ति की सरलता और सहजता का शून्य, आत्मा के आनन्द का शून्य। क्या प्रेम की अभिव्यक्ति के ये सहज माध्यम, भविष्य में अपना अस्तित्व खो देंगे? क्या हमारे मध्य केवल सूचनाओं का ही आदान-प्रदान होगा?

क्या अब कोई नायिका बिस्तर पर, टाँगों को झुलाती हुई, पत्रों का सुख प्राप्त नहीं करेगी? क्या कोई नायक अब अपने मन की बात लिखाने को अपना कोई मित्र नहीं तलाशेगा? सीमा पर गए किसी पुत्र का पत्र क्या अब चौपाल पर नहीं पढ़ा जाएगा?

क्या अब इन्टरनेट के माध्यम से केवल 'मैं ठीक हूँ, आप कैसे हैं' का ही आदान-प्रदान होगा? या फिर हम फ़ोन से ही घण्टों चिपके रहकर दिनचर्या और रात्रिचर्या का ही विवरण देते रहेंगे?

लाल हरी, नीली, काली स्याही यहाँ तक कि कभी खून से खत लिखना, एक-एक शब्द को सजाना, कभी शब्दों के माथे को कंगूरेदार बंधन से बाँधना तो कभी वैसे ही खुले छोड़ देना। कभी किन्हीं पंक्तियों को अण्डर लाइन करना तो कभी बॉक्स बना देना। लिफ़ाफ़ा देखकर ही मज़मू भाँप लेना और पत्र को हौले से, चुपके से खोलना। पत्र पर पता सीधे ही व्यक्ति को इंगित करते हुए लिखा जाए या फिर केयर ऑफ या फिर डॉक्टर ऑफ या ऐसा ही कुछ। जैसे ही सुबह के ग्यारह बजते, बराण्डा आबाद हो जाता। बार-बार चहलकदमी करते हुए मुख्य द्वार पर ही निगाहें टिकी रहतीं। कब डाकिया आएगा और कब कोई पत्र वह लाएगा ? यह ज़रूरी नहीं था कि कोई प्रेम पत्र ही आएगा, लेकिन कोई भी पत्र आए, बस यही इन्तजार रहता था। डाकिया भी कभी पानी पीता, कभी छाछ पी लेता, होली-दीवाली इनाम भी पा लेता। लेकिन अब न जाने कब डाकिया आता है और कब डिब्बे में फालतू से कागज़ डालकर चला जाता है। हाँ, कूरियर वाला ज़रूर हाथ में डाक देकर जाता है। लेकिन वह भी तो किसी मीटिंग की सूचना मात्र ही होती है।

मन तड़प उठता है, कभी ठाले बैठे हुए। कलम की स्याही मचलने लगती है, शब्द बादलों की तरह घुमड़-घुमड़ कर आने लगते हैं, लेकिन किस को पत्र लिखें ? कभी बच्चों को एकाध बार लिख दिया तो वे फ़ोन पर बोले कि इतना बड़ा पत्र पढ़ने में तो समय लगेगा, कभी फुर्सत से पढ़ेंगे और यह फुर्सत उन्हें आज तक नहीं मिली। पति और पत्नी तो आज साथ-साथ ही रहते हैं, कैसे पत्र लिखे ? यदि अलग-अलग शहरों में नौकरी के कारण रहते हैं भी तो फोन है न, हालचाल पूछने के लिए। मित्र तो आज रहे ही नहीं, बस सभी या तो साथी हैं या फिर बिजनेस पार्टनर। लेकिन फिर भी पत्र लिखे जा रहे हैं। मधुमती जैसे ही लोगों के हाथों में जाती है, वैसे ही कुछ पत्र आते है। लेकिन लगता है जैसे वह भी एक सभ्यता का तकाजा मात्र ही है। शायद उसके पीछे भी कही छपासीय-सम्बन्ध बनाने की ही सोच है। कभी-कभी लगता है कि नहीं कुछ लोग है जो वास्तव में पत्र लिख रहे हैं। वे यदि प्रयास करें और मित्र-भाव को ही बढ़ावा देने के लिए पत्र लिखे तो पत्रों का बजूद पुनः जीवित हो उठेगा। नहीं तो हमारा आने वाला कल पत्र-विहीन हो जाएगा।

ऐसा नहीं है कि संचार-माध्यमों के कारण पत्रों का वजूद समाप्त हुआ हो। इसका एक कारण मुझे और दिखायी देता है। हमारे मन में अपनी बात कहने की जो ललक थी, वह समाप्त होती जा रही है। हमारा अन्दर जैसे रीत गया हो। हम जब बातें भी करते हैं तब भी यही होता है, फालतू की बातें, राजनीति की बातें, खेल की बातें आदि। कभी लगता है जैसे हम अपने आपसे ही भागते फिर रहे हैं. कही बातें

करने लगें और रिश्तों की बातें निकल जाएं, उन्हें पनपाने की बातें निकल जाएं, तो फिर क्या होगा? नौकरी में भी यही डर बना रहता है, सबसे दूरी बनाकर चलो। नजदीकियाँ परेशानी का कारण बन सकती हैं। हम एक-दूसरे को मात देने का ही खेल-खेल रहे हैं, इसी कारण यदि मन की और आत्मा की बातें कर लीं तो फिर झगड़ा ही क्या रह जाएगा? घर-परिवार में भी यही डर हम पर हावी है। बेटा, बाप से बात नहीं करता। क्यों नहीं करता? कहीं बाप उससे उसकी कमाई न पूछ ले! बेटा आजकल माँ से भी बात नहीं करता, कहीं माँ उससे प्रेम की भीख न माँग ले। भाई अपनी बहन से बात करते हुए कतराता है, कहीं वह अपना हिस्सा न माँग ले। जब रक्त के रिश्तों की ही यह हालत है तो फिर दूसरे रिश्तों की तो बिसात ही क्या किसी पैसे वाले से रिश्ता कायम कर नहीं सकते, क्योंकि वह ही नहीं चाहता कि आप उससे रिश्ता कायम करें। किसी गरीब से भी रिश्ता नहीं बना सकते क्योंकि एक डर हमेशा बना रहता है कि यह कब आपके संसाधनों की माँग कर लेगा? यही डर हमें कहीं दूर ले गया है हमारी अभिव्यक्ति से। बस अब तो हम केवल मात्र एक मशीन बनकर रह गए हैं। खाओ-पीओ और सो जाओ।

अपने अन्दर का आनन्द सूखता जा रहा है। आनन्द का सोता तो एक-दूसरे का मन बाँटने से फूटता है, अब यह प्रथा बन्द हो गयी है और आनन्द का झरना भी सूख गया है। सुबह उठते ही कभी हम टी.वी. में आनन्द ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं और कभी समाचार पत्र में।

आप अपने दिल पर हाथ रखिए और ईमानदारी से बताइए कि क्या आपका कोई राज़दार है? है ऐसा कोई इस दुनिया में जिसे आप अपने मन की बात बताते हैं? और मन की बात भी कैसी? पैसा कमाने की नहीं, भोग की नहीं। शुद्ध मन की। कभी टटोलिए तो सही अपने मन को, पता नहीं इसमें कितना कुछ दबा है? धकेलिए तो सही कभी पैसे को अपने पास से और इस पर चिंतन करिए केवल अपने आपका। संसार को अपनी बाँहों में समेटने का मन हो जाएगा। सारे ही मन के कलुष धुल जाएँगे। मन आपसे प्रश्न करेगा कि अरे मैं क्यों अपने ही सहयात्री से ईर्ष्या कर रहा हूँ? क्यों उसके मार्ग की बाधा बनना ही मेरा उद्देश्य रह गया है? क्या मेरा जीवन केवल उसकी ईर्ष्या को ही समर्पित होकर रह जाएगा? कभी फक्कड़ों वाला प्रेम करके देखिए। जैसे हम कहीं पिकनिक पर जाते हैं और सारे ही मिलकर अपने-अपने टिफ़न खोलते हैं, वैसे ही खोलिए अपने-अपने मन। फिर देखिए कितनी मिठास आपके जीवन में भर जाएगी?

फिर मैं अपनी मूल बात पर लौट आती हूँ। जब पेन में स्याही रीत जाए और आप कुछ लिखना चाहें तो क्या आप लिख सकेंगे? ऐसे ही जब मन में प्रेम की स्याही ही सूख जाए तब हम कैसे अपनी अभिव्यक्ति को शब्द दे सकेंगे? फिर हम बहाना बनाएंगे, समय का। अरे छोड़ो भी, समय कहाँ है, जो पत्र लिखें! फोन उठाओ और समाचार दे दो। इसीलिए इस प्रेम की स्याही को सूखने मत दीजिए। अपने मन को रीता कभी मत होने दीजिए। रिश्ते न सही, मित्र सही, बस ऐसे ही किसी को भी पत्र लिखिए। आपके पास स्याही शेष है तो रिश्ते भी कभी अपने हो ही जाएंगे। यदि स्याही ही सूख गयी तो फिर रिश्तों को कौन सिंचित करेगा? कभी मन होता है कि अनजान व्यक्तियों को ही पत्र लिखें, ऐसे व्यक्तियों को ही पत्र लिखें जिनके जीवन में बसन्त की जगह पतझड़ ने ले ली है। लेकिन फिर डर हावी होने लगता है, रिश्ता बनने का। रिश्ते से अधिक किसी के लिए कुछ करने का। यही डर हमें किसी को भी पत्र नहीं लिखने देता। मुझे कुछ लोगों से बातें करना अच्छा लगता है, कभी मन होता है कि किसी को पत्र लिखूँ, लेकिन फिर वही डर मुझ पर भी हावी होने लगता है कि कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि मुझसे उसकी उम्मीदें जगने लगेंगी? इन्हीं उम्मीदों के कारण तो अपने पारिवारिक रिश्ते हमसे दूर हुए थे।

कल तक हम दुनिया में अपना परिवार ढूँढ़ते थे, अपने गोत्र से प्रारम्भ करते हुए, अपनी जाति, धर्म, देश के कारण एक परिवारिक रिश्ता व्यक्तियों से जोड़ लेते थे। पत्र उन रिश्तों को सहेजने के माध्यम बनते थे। हमारे मन के अन्दर एक दूसरा दार्शनिक व्यक्ति जो बैठा है, उसे हम पत्रों के माध्यम से बाहर निकालते थे। धीरे-धीरे यह दर्शन हम पर हावी होने लगता था और हम श्रेष्ठ सुसंस्कृत मानव बनने की ओर बढ़ते जाते थे। अपने परिवार में व्यापार को कहीं जगह नहीं देते थे. केवल एक-दूसरे का हाथ पकड़कर चलने की परम्परा तक ही हम सीमित रहते थे। लेकिन आज हम दुनिया को व्यापार की निगाहों से देख रहे हैं। हम रिश्तों में व्यापार ढूँढ़ रहे हैं। मेरा रिश्तेदार या परिचित कौन कहाँ बैठा है? उससे मैं कैसे काम निकाल सकता हूँ? बस इसी बात का आकलन रह गया है। जब हम रिश्तों में ही व्यापार ढूँढ़ने निकलेंगे तब हम एक-दूसरे से बचते फिरेंगे। कोई कितना भी प्रिय रहकर एक मुसीबत भर रह जाएगा। फिर हमें सभी रिश्तों में केवल स्वार्थ दिखायी देने लगेगा और धीरे-धीरे हम अपने इस परिवार से दूर होते जाएंगे।

सबके मन में प्रेम बसा है, सबके मन में दर्द बसा है। लेकिन इस प्रेम और इस दर्द से कहीं अधिक डर बसा है। अत: हमें इस प्रेम और दर्द को बाहर निकालना है और डर को पीछे धकेलना है। जिनके हाथ में कलम है, कम से कम वे शुरुआत कर

(शेष पृष्ठ 42 पर)

जीवन प्रवाह

❑ कृष्ण कुमार पाण्डेय

जीवन यह सरिता जल प्रवाह,
नित बहते रहना विषम राह।
पर्वत, नद, तीर्थ अरण्य गुज़र,
नित बहते रहना यही चाह॥1॥

हिमनद से सिन्धु मुहाने तक,
गोमुख से गंगासागर का।
यह सफर जन्म से मृत्यु तक,
गतिशील नदी जैसा प्रवाह॥2॥

धरती की प्यास बुझाने को,
पावन संकल्प निभाने को।
जग से अवसाद मिटाने हित,
अविराम सतत बहने की चाह॥3॥

यात्रा प्रवाह है जीवन में,
गतिमय ऊर्जा है जीवन में।
टकराव शिला अवरोध भरा,
यह जीवन की है कठिन राह॥4॥

टेढ़े मेढ़े ऊँचे नीचे,
संकरे चट्टान भरे पथ में।
बहता जल उछल गरजता है,
संकल्प प्राण भरने की चाह॥5॥

कर्मठ बिजई उत्साह भरी,
मानव जीवन की ऊर्जा हो।
संघर्ष कर सके नदी भाँति,
उत्साह भरा जीवन प्रवाह॥6॥

गंगासागर के पास पहुँच,
गंगा से माँगे शांति राह,
सुख शांति तृप्त हो मृत्यु निकट,
ऐसा हो जीवन, बस यही चाह॥7॥

–7/7/24 निराला नगर, रायबरेली

❑

राष्ट्र धर्म

❑ डॉ. उषा खोसला

तन, मन, धन से राष्ट्र को समर्पित हो जाना ही राष्ट्र धर्म है। जिस जीवन में राष्ट्र के प्रति प्रेम नहीं है, राष्ट्र के हितों की रक्षा की भावना नहीं है, राष्ट्र के विकास की ओर बुद्धि का झुकाव नहीं है वह जीवन निकृष्ट जीवन है। राष्ट्र को ऊँचा उठाने का कार्य राष्ट्र के नागरिकों के कन्धों पर है। यदि नागरिक ही अपना कर्त्तव्य भूल गये तो राष्ट्र प्रगति के मार्ग में कैसे अग्रसर होगा। राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाना, राष्ट्र को समृद्ध बनाना हर नागरिक का विशेष धर्म है। हर देशवासी को अहसास होना चाहिए कि भारत वर्ष भिन्न–भिन्न प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा है। समस्यायें बढ़ती ही जा रही है। बढ़ती आबादी, शिक्षा की कमी, व्यवसाय की कमी, निर्धनता, रोग, पर्यावरण की समस्या, यातायात के साधनों का अभाव, मंहगाई, पीने के पानी की कमी, भ्रष्टाचार, दहेज की समस्या, भ्रूण हत्या, दंगेफंसाद, नशाखोरी, आतंकवाद, उग्रवाद न जाने कितनी–कितनी समस्याओं से देश गुज़र रहा है। यदि राष्ट्रवासी चाहें तो इन समस्याओं को सुलझाना कठिन तो हो सकता है लेकिन असम्भव नहीं। केवल निष्काम भाव से देश के हितों की रक्षा करनी होगी और देश की सेवा को परम धर्म समझ कर अपना सर्वस्व अर्पित करना होगा।

जिस प्रकार से सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तये धर्म के भिन्न–भिन्न रूप है ठीक उसी प्रकार से राष्ट्र सेवा, राष्ट्र हित भी धर्म का एक रूप हैं। जो राष्ट्र हित के मार्ग पर चल पड़ा उसे फिर अलग से किसी और धर्म के मार्ग की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्र धर्म में सब धर्मों का रहस्य छिपा हुआ है। राष्ट्र की कोई एक समस्या को पकड़ लो एवं उसके निवारण के लिए तन, मन, धन से समर्पित हो जाओ। अपने अन्दर सोई हुई शक्ति को जगाओ और एक दिन सूर्य उदय हो जाएगा। यदि राष्ट्र के हर नागरिक में राष्ट्रीयता की भावना पैदा हो जाएगी तो मनुष्य धरती पर स्वर्ग उतार सकता है। केवल विचार करने से क्या बनेगा, ऐसा कह देने से क्या होगा कि हमारा देश एक संकट की स्थिति से गुज़र रहा है। इसे संकट से निकालने के लिए पुरुषार्थ होना चाहिए। कोई भी योजना बनाओ और दृढ़ संकल्प से उसे पूरा करने के लिए तत्पर हो जाओ। हज़ारों की संख्या में योगदान देने वाले स्वयं ही मिल जायेंगे।

जिसकी वायु में सांस लिया है, जिसका अन्न खाकर शरीर को बड़ा किया है, जहाँ से विद्या ग्रहण करके ऊँचे पद पाये, प्रतिष्ठा पाई, सुख सुविधा पाई उसके ऋण

से उऋण होने का अवसर आ गया है। जात–पात, मत सम्प्रदायों, छोटे–बड़े का भेद भाव मिटाकर पूरा राष्ट्र एकचित्त होकर इसके विकास का उद्घोष करे। सब प्रकार के भेद–भाव संकीर्ण मन की उपज हैं। इस संकीर्णता से ऊपर उठ कर मन और दिव्यता का विकास करो और राष्ट्र की सुख, समृद्धि, खुशहाली के लिए कदम से कदम मिलाकर बढ़ते चले जाओ।

थोड़ा ध्यान दो कि पिछले 60 वर्षों में राष्ट्र ने किन–किन क्षेत्रों में विकास किया है और किन–किन क्षेत्रों में गिरावट आई। किसी एक गिरावट के क्षेत्र को पकड़ कर उसे निखारना, संवारना, शोधना आरम्भ हो जाये तो राष्ट्र की काया ही पलट जायेगी। देश का भाग्य बदलने की योग्यता हर राष्ट्रवासी में है। उस योग्यता को प्रकट करना पड़ेगा। नहीं तो जिस योग्यता को लेकर पैदा हुए थे उसी को साथ लेकर इस जगत से विदाई हो जाएगी। यह राष्ट्र के लिए तथा अपने लिए हर प्रकार से घाटे का सौदा है।

आज देश की सीमायें सुरक्षित नहीं हैं। शत्रु देश में आतंकवाद फैलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। आज भारत की संस्कृति सुरक्षित नहीं, संस्कारित जीवन का अभाव हो रहा है, पाश्चात्य जीवन की नकल ने युवा पीढ़ी के मन से शान्ति छीन ली है। युवा पीढ़ी जवान होने से पहले ही बूढ़ी होती जा रही है। शत्रु देश इस देश की समृद्धि को लूटने के लिए आँख लगाये बैठे हैं। यदि इतना भयानक दृश्य देखकर भी राष्ट्रवासी नींद से नहीं जागे तो समस्या और गंभीर रूप धारण कर सकती है। निजी स्वार्थों को छोड़कर मैदान में डट जाओ और भारत माता के अश्रु पोंछो।

इस देश को संताप से मुक्त करके इसमें फूलों की सुगंध केवल देशवासी ही भर सकते हैं। यही ऋण चुकाने की विधि है। संताप को सौंदर्य में परिवर्तित करने का काम राष्ट्रवासी ही कर सकते हैं। उन्हें अपने इस कर्त्तव्य को कभी भी नहीं भूलना चाहिए। यह तो तपस्वियों, योगियों, सिद्धों और प्रबुद्धों की भूमि है। भटकते हुए देशवासियों को शुद्धता का मार्ग पकड़ कर प्रबुद्ध बनना होगा। यह भूमि त्यागियों का तपोवन है, यहाँ वीरों की नंगी तलवारों का दिव्य नाच होता रहा है, इस भूमि पर कायरता और भय शोभा नहीं देते।

भारत देश महान् है अपनी सभ्यता, संस्कृति, ऋषि परम्परा, दिव्यगुण, मर्यादाओं के कारण। इस राष्ट्र का नव निर्माण करना होगा और खोई हुई सम्पदा को वापिस लाना होगा तभी इसकी विशालता और महानता की जड़ों को मज़बूत किया जा सकता है। इसी धरा ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को पैदा किया जो समुद्र की तरह शांत और हिमालय की तरह अडिग थे।

केवल भौतिक विज्ञान का विकास और आविष्कार ही राष्ट्र की महानता के कारण नहीं हो सकते। मानवता के गुणों को विकसित किये बिना भौतिकवाद अधूरा है और इससे जीवन में परिपूर्णता नहीं हो सकती। राष्ट्र के विकास के लिए भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में एक संतुलन लाने की आवश्यकता है रूढ़ियों तथा सार

हीन धारणाओं से ऊपर उठकर सच्ची मानवता को जगाकर राष्ट्र का विकास किया जा सकता है। विषयों की शिक्षा के साथ-साथ आत्म विकास की शिक्षा, लोक कल्याण का मार्ग तथा जनता के हितों की रक्षा की शिक्षा भी अनिवार्य होनी चाहिए।

ऋषि परम्पराओं को मान्यता देकर इनको जीवन के क्षेत्र में बढ़ावा दिया जाना चाहिए। माता-पिता, गुरुजन तथा महापुरुष ही समाज के बच्चों के पथ प्रदर्शक बन सकते हैं। इसलिए धर्म की शिक्षा बचपन से ही दी जानी चाहिए। देश के नागरिक ही तो देश के भाग्य के रखवाले हैं वे तन-मन-धन से अपने राष्ट्र के लिए समर्पित हो जायें तो रामराज्य आने में समय न लगे। आडम्बर पूर्ण जीवन से छूटने का सूत्र और राष्ट्र विकास की विधि तत्व ज्ञानियों के पास है। उनके बताये मार्ग को श्रद्धा पूर्वक जीवन में उतारा जाए तो राष्ट्र शान्ति, समृद्धि और कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होगा।

हर चेहरे पर मुस्कान हो, हर परिवार धन धान्य से भरा रहे तथा भारत देश विश्व के सामने सिर उठाकर खड़ा हो सके। इस सपने को साकार करने में नेता लोग तो बहुत सफल होते नहीं दीख रहे हैं। ये दायित्व तो अब राष्ट्रवासियों को ही उठाना पड़ेगा। निष्काम भाव से इस समस्या को हल करने का बीड़ा यदि देश के नागरिक उठा लें तो क्या नहीं किया जा सकता। लेकिन इसके लिये निजी स्वार्थ का त्याग करना पड़ेगा। यदि मनुष्य धर्म के मार्ग पर चल पड़े तो ऊँच-नीच, जाति-पाँत का भेदभाव मिट जाएगा क्योंकि धर्म तो जोड़ने का काम करता है, धर्म तोड़ता नहीं है। ❑

-आयुर्वेद हीलिंग सेंटर, 29621, मिशन बुलवर्ड
हेवर्ड सी.ए. 94544 यू.एस.ए.

(पृष्ठ 38 का शेष भाग)

ही सकते हैं। यदि यह प्रेम सूख गया तब फिर यह दुनिया कितनी वीभत्स हो जाएगी शायद इसकी कल्पना कोई नहीं कर पा रहा है? पत्र इस प्रेम को बाहर निकालने के लिए या उसे जागृत करने के लिए एक सशक्त माध्यम बन सकते हैं। आइए हम सब एक-दूसरे को बिना किसी स्वार्थ के पत्र लिखें। केवल एक ही स्वार्थ हमारे ध्यान में रहे कि इस पत्र को पढ़ने से मुझे सुख मिला। मैं भी ऐसा ही पत्र लिखकर दूसरे को सुखी करूँ। आज दुनिया को मित्रों की आवश्यकता है, हमने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए मित्र खो दिए हैं। तो उठाइए कलम और अपने शब्दों के द्वारा मित्र बनाइए और दिल पर जमी बर्फ को पिघलाने का प्रयास कीजिए। मैं यहाँ श्री गिरिराज किशोर जी को भी धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने पत्र प्रकाशित करके मेरी पत्रों के प्रति अभिव्यक्ति को शब्द देने के लिए प्रेरित किया। अभाव तो बहुत दिनों से खटक रहा था, लेकिन बिना किसी प्रेरणा शब्द अभिव्यक्ति नहीं होते अत: आप भी किसी की प्रेरणा बनिए और पत्रों के द्वारा मित्र बनाइए। केवल मित्र, लाभ का चिंतन नहीं और मित्र से तो कदापि नहीं। ❑

-7, चरक मार्ग, उदयपुर, राजस्थान

नए भारत का निर्माण

❑ मुकेश अंबानी

पिछले छह दशकों में भारत में काफ़ी बदलाव आया है, लेकिन परिवर्तन की गति अधिक तेज़ होनी चाहिए। यह भी ज़रूरी है कि विकास का लाभ सबको मिले। यदि भारत को विश्व में अपना उचित स्थान हासिल करना है तो अब तक जैसा चलता आया है उसे ही जारी नहीं रखा जा सकता। इसके लिए हमें राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज में परिवर्तन लाने होंगे। इस दिशा में पहला कदम तो यह है कि हम अपनी सोच में परिवर्तन लाएँ। मामूली बदलाव से यह संभव नहीं। इसके लिए यह आवश्यक है कि नए भारत की हमारी परिकल्पना सर्वजनहिताय वाली हो। हमें ऐसा भारत बनाना है जहाँ हर नागरिक समर्थ हो, यहां जनता नई प्रौद्योगिकी व योग्यता हासिल कर सके और उद्यमशील पुरुषों व महिलाओं को अभूतपूर्व अवसर हासिल हों। असली सामर्थ्य तो तभी हासिल होगी जब हर व्यक्ति अपने भाग्य का स्वयं निर्माता हो। भारत में अवसर मुट्ठी भर लोगों तक ही सीमित नहीं रहने चाहिएँ। अवसर सच्चे तो तभी कहलाएंगे जब संपन्न और विपन्न के बीच कोई खाई न रहे, जब आमदनी, सूचना व साधनों से लैस व्यक्तियों तथा इनसे वंचित व्यक्तियों के बीच कोई अंतर न रह जाए। मेरा मानना है कि एक नए भारत का उदय हो रहा है। उसके कुछ लक्षण नज़र भी आ रहे हैं। कुछ और लक्षण प्रकट होना अभी बाकी है। नई प्रौद्योगिकी ने लोगों के सशक्तीकरण एवं अपार अवसरों के द्वार खोल दिए हैं। रचनात्मकता, उत्पादन और वितरण के क्षेत्रों के लोकतंत्रीकरण का सिलसिला शुरु हो चुका है। मेरी यह भी मान्यता है कि भारत और पूरे विश्व का विकास परस्पर जुड़ा हुआ है। इसका कारण यह नहीं है कि दुनिया का हर छठा व्यक्ति भारतीय है, न इसलिए कि हमारे जीवनकाल में ही भारत विश्व की तीसरी आर्थिक महाशक्ति बनने वाला है और न ही इसलिए कि विश्व में संपदा निर्माण की प्रक्रिया का केन्द्र पश्चिम से हटकर पूर्व, चीन और भारत में स्थानांतरित हो रहा है।

नि:संदेह यह सब महत्वपूर्ण है, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण है 21वीं सदी को संवारने वाली शक्तियों में हो रहे गुणात्मक परिवर्तन। वर्तमान ज्ञान युग में अभिलाषा

और सूचना परिवर्तन के दो शक्तिशाली औज़ार है। अभिलाषाएं न तो कम होने वाली है और न थमने वाली है। सूचनाओं का तेजी से लोकतंत्रीकरण हो रहा है। एक ऐसे विश्व में जहाँ व्यापक गरीबी है और विषमता का साम्राज्य है वहां इन दोनों चीजों ने धमाका कर दिया है। दूसरे विश्व युद्ध के अंत से आज तक विश्व में गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों पर लगभग ढ़ाई लाख करोड़ डालर खर्च किए जा चुके हैं। इसके बावजूद गरीबी के विरुद्ध युद्ध अभी अधूरा ही है। हममें से अनेक यह सोचते है कि दुनिया बड़ी सरल और सहज है, लेकिन मेरी मान्यता है कि यह बड़ी कटीली है, क्योंकि विकसित देशों में रहने वाले मात्र 15–20 प्रतिशत लोग ही सम्पन्नता में जी रहे हैं, जबकि विश्व की 75–80 प्रतिशत आबादी अभावों में जी रही है। यह समझना हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है कि भूमंडलीकरण एक स्पष्ट सपाट स्थान का ही निर्माण करता है, हमें गरीबी और अभावों के विशाल समुद्र के बीच संपन्नता के द्वीप नहीं चाहिए। दुनिया में आज विकास और सम्पन्नता की दौड़ जारी है, लेकिन दुनिया में रहने वाले 6 अरब लोगों में से 5 अरब लोग इस दौड़ से बाहर हैं। लगभग 20 प्रतिशत लोग सिर्फ एक डालर प्रतिदिन की आय के साथ अथाह गरीबी में जी रहे हैं। तीन अरब लोगों को सुरक्षित और साफ पानी नसीब नहीं है। ये आंकड़े अंतरात्मा को झकझोरने के लिए काफी हैं। विश्व भर में पसरी गरीबी आश्चर्यचकित कर देती है। यही स्थिति देशों के बीच विषमता और देशों के भीतर व्याप्त विषमता की है। विश्वव्यापी यह विषमता न तो तर्कसंगत है और न स्वीकार्य। अगले 25 वर्षों में विश्व की आबादी में 2 अरब की वृद्धि हो जाएगी। इसमें से 90 प्रतिशत वृद्धि गरीब देशों में होगी। इन स्थितियों में तत्काल कारईवाई की ज़रूरत है। इसके लिए हमें विकास ढांचे में आमूल–चूल परिवर्तन करने होंगे।

विकास का नया माडल गढ़ने के लिए हमें अपने घर के आसपास झांकना

भारत नि:संदेह इतिहास का एक नया पन्ना लिख रहा है, लेकिन पूरे देश में खुशहाली लाने के लिए केवल एक पन्ना काफी नहीं है।

होगा। भारत नि:संदेह इतिहास का एक नया पन्ना लिखा रहा है, लेकिन पूरे देश में खुशहाली लाने के लिए सिर्फ एक पन्ना काफी नहीं है। हमें अनेक कमियों से निपटना है। शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्यान्न सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा आदि क्षेत्रों में हम कमियों से जूझ रहे हैं। कई कार्य अभी अधूरे पड़े हैं, जिन्हें हमें कुशलतापूर्वक और शीघ्र पूरा करना है। यह सब करने के लिए विस्तृत नज़रिए, कुशल नेतृत्व और असाधारण कार्य प्रणाली पर आधारित विकास के नए माडल की ज़रूरत है।

अब तक के विकास माडल वंचितों को भत्तों और अनुदानों पर टिके हुए थे। अतः नए माडल का आधार कमज़ोरों का सशक्तीकरण होना चाहिए।

इस माडल के तहत कोशिश होगी कम क्रय शक्ति वालों की आमदनी बढ़ाना। स्वतंत्रता के बाद विकास का जो माडल चुना गया उसके तहत आर्थिक विकास का आधार सार्वजनिक उपक्रम थे।

आज के नए माडल में भारतीय अर्थव्यवस्था को शिखर पर ले जाने के लिए ऊर्जावान निजी संस्थाओं को शक्तिशाली बनाना होगा। निजी संस्थाओं की मौजूदा व्यवस्था के तहत इस लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सकता। वर्तमान व्यवस्था आदेश व नियंत्रण पर आधारित है। यह सरकारी व्यवस्था व प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। इसमें कारपोरेट क्षेत्र सार्थक भूमिका अदा कर सकता है। ऐसे सफल कारपोरेट संस्थान जिनके पास दृष्टि है वे इस तेजी से बदलते विश्व में सफलता हासिल करने में सक्षम हैं। उनकी दृष्टि व्यापारिक हितों के परे व्यापक राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखने में समर्थ है। अनेक क्षेत्रों में यह परिलक्षित होता है। हमें विकास का एक ऐसा माडल गढ़ना होगा जिसमें निजी क्षेत्र का विशिष्ट स्थान हो और वह उसकी ऊर्जा व उद्यमशीलता का भरपूर लाभ ले सके। यह माडल टकराव व विरोध के स्थान पर सहयोग व भागीदारी पर आधारित होना चाहिए। ❑

– लेखक रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ के चेयरमैन हैं

राष्ट्र-निर्माता

एक शक्तिशाली एवं मज़बूत राष्ट्र के निर्माण के लिए उस राष्ट्र के नागरिकों को बहादुर, साहसी होने के साथ ही कठिन परिश्रमी भी होना अनिवार्य है। जब तक हम अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान के लिए सत्य एवं सम्मान के साथ संघर्ष नहीं करेंगे, तब तक हम सफल नहीं होंगे। इसके लिए हमको बहादुरी के साथ औरों से अधिक परिश्रम करना होगा। जब लोग पलायन करते हों तब हमें साहसपूर्वक खड़ा होना होगा, तब जाकर हम अपने राष्ट्र का एक मज़बूत और गहराई युक्त स्तम्भ बन सकेंगे। जिस देश के नागरिक इस भावना से परिपूर्ण होकर काम करेंगे, वही राष्ट्र आकाश की ऊँचाइयों को छू सकता है।

योग यात्रा

❑ डॉ. धर्मवीर सेठी

यजुर्वेद की एक ऋचा है:

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शारदः शतँ, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्॥

–यजुः 36/24

जिसका काव्यार्थ है:

जगदीश यह विनय है, हम वीरवर कहावें।
होकर शतायु स्वामिन्! तुमसे लगन लगावें॥
सौ साल तक हमारी आँखें हों ज्योतिधारी।
कानों से शब्द सम्यक् सुनने की शक्ति सारी॥
वाणी विराट् प्रभु की विरदावली सुनावें।
परतन्त्रता है पातक स्वातन्त्र्य मन्त्र गावें॥
सौ वर्ष से अधिक भी जीवित रहें सुखारी।
सर्वाङ्ग की क्रियायें स्थिर रहें हमारी॥

स्पष्ट है सौ वर्ष तक क्रियाशील बने रहने की प्रार्थना। परन्तु बिना शारीरिक और मानसिक स्वस्थता के यह कैसे सम्भव हो सकता है? इसी कारण स्वामी रामदेव जी ने एक नारा दिया–**'स्वास्थ्य प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है'** (Good Health is Humanity's Birthright) और इसके लिए उन्होंने प्रेरणा ली पाँचवीं शती AD में रचित 195 सूत्रों वाले प्रामाणिक ग्रन्थ पातंजल योगदर्शन (योगसूत्र) से।

योग शास्त्र के प्रणेता पतंजलि ने योग के आठ सोपान बताएं हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। (योगदर्शन 2/29)

युज धातु से व्युत्पन्न योग शब्द का साधारण अर्थ है जोड़ना/जोतना। प्रथम मन–शरीर–आत्मा का एकीकरण; दूसरा सामाजिक दृष्टि से मानव–मानव में समरसता और तीसरा मानव और प्रकृति में सामंजस्य (***समत्वं योग उच्यते***– गीता 2/48) क्योंकि ये सब एक जैसे पाँच तत्वों से बने हैं और अन्तिम अर्थ है उस परम सत्ता से एकात्म भाव अर्थात् कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति। (***योगो मोक्ष प्रवर्त्तकः***–चरक, शरीर 1/137) इस भाव की अनुभूति होनी परमावश्यक है। महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश महाकाव्य में योग का कुछ ऐसा ही चित्रण किया है–

वार्धके मुनिवृत्तिनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् (1/8)

योग की सार्थक परिभाषा एक और भी है। **'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' (योगदर्शन 1/2)** अर्थात् अभ्यासपूर्वक स्वेच्छा से चंचल चित्तवृत्तियों का नियमन। और सफलता पूर्वक नियमन (नियन्त्रण) ही जीवन का मूलमन्त्र है।

यम एक सामाजिक अनुशासन है जिसके अंग हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। **नियम** वैयक्तिक अनुशासन है जिसमें शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान की गणना होती है। महर्षि पतंजलि के अनुसार **आसन** का अभिप्राय है ईश्वरीय चिन्तन (Meditation) के लिए बैठने की स्थिति, बैठने का ढंग चाहे वह पद्मासन, सुखासन या वज्रासन में से कोई भी हो। आसन प्रायः दो वर्गों में बाँटे गए हैं (Meditative Posture) और शरीर के अलग-अलग अंगों को स्वस्थ और सुदृढ़ बनाए रखने के लिए अपनाए गए Postures. अभिप्राय यह कि प्रत्येक आसन से सुखानुभूति ही होनी चाहिए। **'स्थिर सुखम आसनम्' (2/46)।** आसनों का मुख्य उद्देश्य मन को स्थिर करने में सहायता पहुँचाना है।

प्राणायाम का अर्थ है श्वासों पर नियंत्रण। जीवन का आदि भी श्वास है और अन्त भी श्वास। 'जब तक साँस तब तक आस' वाली कहावत कितनी सटीक है। इसलिए जीवन पर्यन्त शरीर के प्रत्येक अणु को शुद्ध वायु-आक्सीजन-का मिलना अत्यन्त आवश्यक है। छान्दोग्य उपनिषद् में 'प्राण' को प्रजापति, अग्नि, ब्रह्मा, माता, पिता, भ्राता, स्वसा, आचार्य और ब्राह्मण आदि कहा गया है। एक जन्म तो माँ के गर्भ से होता है परन्तु दूसरा जन्म मिलता है प्राणायाम से जिसे (Divine) मातृ-ऊर्जा कहा गया है। अस्तु! प्रार्थना करते समय श्वास (अन्दर लेने वाला) और प्रश्वास (बाहर छोड़ने वाला) की गति पर विशेष ध्यान रखा जाता है।

प्रत्याहार का अर्थ है कछुए की तरह बाहरी दुनिया का परित्याग कर अन्तर्मुखी हो जाना। *'तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा'* (त्याग भाव से उपभोग) ईशोपनिषद् का कथन है। **धारणा** का अभिप्राय है अपने मन, हृदय और आत्मा को उस केन्द्र पर केन्द्रित करना जहाँ बाह्य और आन्तरिक senses मिलती हैं। अर्थात् भ्रूमध्य भाग पर जो दोनों आंखों की भौंहों के बीच होता है। **ध्यान** की स्थिति में निरन्तर Meditation से जीवात्मा और परमात्मा का मधुर मिलन होता है और **समाधि** तक पहुँचते -पहुँचते योग के वास्तविक अर्थ का ज्ञान होता है-मानव-मानव में, मानव-प्रकृति में, मानव-स्रष्टा में एकात्म की अनुभूति-गीता की शब्दावली में *'एकत्वं अनुपश्यतः।'* शंकराचार्य इस स्थिति को **'अद्वैत',** बौद्ध दर्शन में **'निर्वाण'** और जैन दर्शन में इसे **'कैवल्य'** की संज्ञा दी गई है। भारतीय दर्शन शास्त्र में इस अभेद की स्थिति को *'अहं ब्रह्मास्मि'* कहा गया है।

नश्वर शरीर की प्राप्ति के बाद इन आठ पड़ावों को लांघते हुए निर्वाण प्राप्त करना भी स्वयं में किसी लम्बी यात्रा से कम नहीं। वैसे यात्रा का साधारण अर्थ है

एक स्थान से दूसरे स्थान, एक नगर से दूसरे नगर अथवा एक देश से दूसरे देश को सोद्देश्य पृथ्वी (थल मार्ग), जल (समुद्र मार्ग) और आकाश (वायु मार्ग) से जाना। विज्ञान के क्षेत्र में हुई अद्वितीय प्रगति ने तो इस क्षेत्र में की जाने वाली खोजों के लिए अन्तरिक्ष यात्रा को भी जोड़ दिया है।

यात्रा के साथ जब कोई विशेषण लग जाता है तो उसका स्वरूप ही बदल जाता है। वह तीर्थ यात्रा बन जाती है। भारत–भू पर्वत शृंखलाओं, नदियों और शस्य–श्यामला पर्यावरण के लिए प्रसिद्ध है। इनकी तलहटी अथवा इन के किनारों पर बसे शहर स्वत: तीर्थ स्थल बन जाते हैं। तीर्थ यात्रा (Pilgrimage) के लिए घर से निकला यात्री मात्र जीवन की सुख–सुविधाएँ नहीं चाहता वह त्याग भाव से विचरता हुआ अन्तर्मन की शान्ति की खोज करता है। यात्राएं मनुष्य को सहनशील बनाती हैं।

जून मास में मुझे सपत्नीक 'योग यात्रा' में सम्मिलित होने का अवसर मिला था और वह भी योगर्षि स्वामी रामदेवजी के साथ सात दिन चौबीस घण्टे समुद्र के पाट पर *सुपर स्टार वर्गो क्रूज़* पर आरूढ़ हो। यात्रा को नाम दिया गया था **'समुद्र पर योग'** (Yoga on Sea)। पहली बार यह प्रयोग पतंजलि योगपीठ हरिद्वार और विश्व जागृति मिशन ट्रस्ट कोलकाता के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित किया गया था। डिस्कवरी ट्रवेल्ज़ एवं टुअर्ज़ और जस्ट हालिडेज़–ये दो थे Tour operators.

स्वामी रामदेव जी द्वारा किए जाने वाले उद्घोष 'भारत माता की जय' और 'वन्दे मातरम्' के साथ यात्रा आरम्भ हुई।

31 मई 2008 : दिल्ली विमान पत्तन से कैथे पैसिफ़िक की उड़ान CX638 द्वारा रात्रि को हांगकांग पहुँचे। उड़ान बहुत ही आरामदायक और *क्रियू* का व्यवहार प्रशंसनीय था। सभी यात्रियों को पूर्व निर्धारित विभिन्न 5 सितारा होटलों में बसों द्वारा रात्रि विश्राम के लिए ले जाया गया।

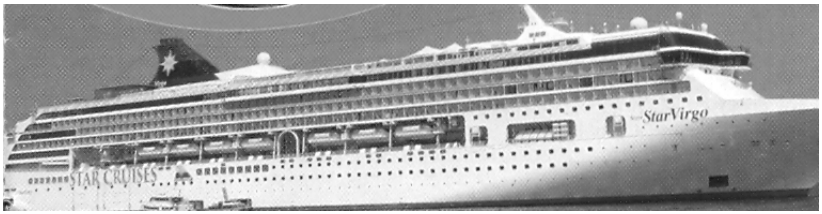

1 जून 2008: होटल की *काफ़ी शॉप* में शुद्ध सात्विक प्रातराश के बाद पुन: बसों से *क्रूज़ टर्मिनल,* जो समुद्र के किनारे था, सबको ले जाया गया। लगभग ग्यारह सौ साधक उस विशाल योग शिविर में सहभागिता के लिए आए थे। प्रभु का स्मरण और कवि की उस पंक्ति *'तीर पर कैसे रुकूँ मैं, आज लहरों का निमन्त्रण'* पाठ करते समुद्री जहाज़ पर कदम रख ही दिया। सब के लिए 13 तलों वाले उस *'क्रूज़'* पर

अपने–अपने कमरे पहले से ही आवंटित थे। वहाँ के कर्मचारियों की कार्य कुशलता भी सराहनीय थी। उस विशालकाय *'क्रूज़'* को देख आंखें खुली की खुली रह गईं और उसके अन्दर कमरों और प्रत्येक तल पर अलग–अलग सुविधाओं की तो सानी ही नहीं थी। शुद्ध शाकाहारी मध्याह्न भोज की व्यवस्था 12वें माले पर थी।

स्वामी रामदेवजी के साथ डेढ़ घण्टे का प्रथम सत्र ***'समाधान'*** जहाज़ के ***'लीडो हाल'*** में आयोजित हुआ। उमड़ते हुए विशाल जन समूह को देख स्वामी जी ने इसे 'परिचय–सत्र' में परिणत कर दिया और प्रत्येक साधक को अपने पास बुला परिचय प्राप्त कर अन्तर्मन से आशीर्वाद दिया। स्वामी जी से मिलने की उत्सुकता देखते ही बनती थी। मुख्य संयोजक इमामी ग्रुप कोलकाता के श्री सुशील गोयनका ने स्वामी जी का विधिवत् अभिनन्दन किया। स्थानीय छः बजे सायं जहाज़ ने वहाँ से प्रस्थान किया। ऐसा आभास होता था कि जहाज़ चलते–चलते भी स्थिर ही है। रात्रि भोज और विश्राम जहाज़ पर ही था।

2 जून 2008: *'क्रूज़'* की 12वीं मंजिल पर तरण–ताल। उसके एक ओर योग ऋषि स्वामी रामदेव का मंचः बाकी तीन ओर योग साधकों के लिए बैठने का स्थान। प्रातः ठीक पाँच बजे स्वामी जी ने मंच से सभी साधकों का अभिवादन स्वीकार करते हुए अपना आशीर्वाद दिया। श्री सुशील गोयनका ने प्रस्तुत अनूठे शिविर की सोच, उसकी तैयारी की सब को जानकारी देते हुए स्वामी जी का पुष्प गुच्छों से कार्यकर्ताओं द्वारा स्वागत कराया।

जहाज़ की गति, हल्की–हल्की फुहार, हवा के झोंके और सूर्योदय की प्रतीक्षा में प्रणव–मन्त्र एवं *'असतो मा सद्गमय'* आदि ऋचाओं के उच्चार के साथ योग के महत्व का संक्षिप्त परिचय देते हुए अपने निर्धारित सात प्राणायामों में प्रथम *'भर्त्सिका'* से सत्र का आरम्भ हुआ। पूर्णतः शुद्ध आक्सीजन का पान; *'कपाल–भाति'* में अन्तः श्वास लेते हुए पेट का मन्थन; *'अनुलोम–विलोम'* सूर्य और चन्द्र की प्रतीक दो नासिकाओं से श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया, बीच–बीच में भजन और लघु प्रवचन। 'चंचल मन मेरे ओ३म् जपा कर ओ३म्' स्वामी जी के मधुर कण्ठ से सुनने को मिला। चतुर्दिक अत्यन्त सौम्य वातावरण। समुद्र की छाती पर चलता जहाज़ और प्रकृति की अठखेलियां। अपने प्रवचन में स्वामीजी ने आधुनिक आई.टी. शब्दावली में प्राणायाम को Software और आसनों को Hardware बताया। दोनों का परस्पर सामञ्जस्य रोगोपचार के लिए भी लाभप्रद होता है।

सूर्य की प्रथम रश्मियों के साथ हम बढ़ रहे थे अपने दूसरे पड़ाव दक्षिण चीन समुद्र के **सान्या टापू** की ओर परन्तु उससे पूर्व प्रातः 10 बजे 'समाधान' सत्र पूर्वोक्त स्थान पर ही निर्धारित था। शेष साधकों के परिचय और उनको आशीर्वाद देने के

बाद अपनी सांस्कृतिक धरोहर की व्याख्या करते हुए स्वामी जी ने साधकों को उनका कर्त्तव्य बोध कराया। प्रश्नोत्तर भी हुआ। दोपहर एक बजे 'सान्या' बन्दरगाह पर जहाज़ आकर रुका। 'सान्या' 'संन्ध्या' का ही अपभ्रंश है। पहले तो समुद्री किनारे (Sea shore) पर घूमने ले जाया गया और वहाँ से हम एक ऐसी फ़ैक्टरी गए जहाँ नारियल से अनेकानेक खाद्य-वस्तुएं बनाई जाती थीं। वहाँ चीनी बालिकाएं अत्यन्त तन्मयता से अपने कार्य में लीन दिखीं। उनके चेहरे पर सदा मुस्कान दिखाई दी। परन्तु वे हमारी भाषा नहीं समझ पाईं। वहाँ से City Center होते हुए क्रूज़ पर लौटे। सान्या की स्वच्छता, प्राकृतिक छटा मन लुभावनी थी। रात्रि नौ बजे प्रस्थान हुआ।

3 जून 2008 : प्रात: 5 से 7 बजे तक का योग-सत्र चलते हुए जहाज़ पर संगीत की मधुर लहरियों के साथ, प्रकृति की अठखेलियाँ वैसी ही थीं। विदेशी पर्यटक भी 13वीं मंज़िल से स्वामीजी और साधकों को गीतोच्चार के साथ आसन-प्राणायाम करते देख फूले नहीं समाते थे। तीव्र वर्षा में भी *योगिक जागिंग* चलती रही कि इसी बीच समुद्र में बड़े-बड़े पहाड़ नज़र आने लगे। हम वियतनाम के *हेलांग बे (Halong Bay)* की ओर बढ़ रहे थे जो कि Hanoi से 160 कि.मी. उत्तर-पूर्व स्थित था। प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण यहाँ की 1600 पर्वत मालाओं में स्थित कन्दराओं के कारण Unesco द्वारा इसे World Heritage Site की सूची में रखा गया है। प्रात: 9 बजे *'क्रूज़'* समुद्र के बीच में रुका और वहाँ से मोटर बोट द्वारा उन

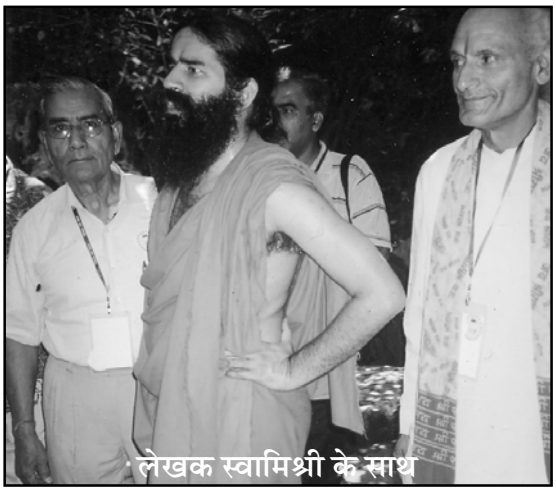

लेखक स्वामिश्री के साथ

अद्‌भुत गुफ़ाओं के समीप हमें ले जाया गया। उनके अन्दर की अद्वितीय आकृति देख, कि चट्टानें कैसे और किसके सहारे खड़ी हैं, आश्चर्य का ठिकाना न रहा। गरीबी वहाँ भी नज़र आई। जहाज़ पर वापिस पहुंच अपराह्न तीन बजे पुन: समाधान

सत्र चला। इस बार राष्ट्रधर्म पर स्वामी जी का विस्तृत उद्‌बोधन था। सायं 4 बजे वहाँ से हमने हांगकांग के लिए प्रस्थान किया। वस्तुतः *सुपर स्टार वर्गो क्रूज़* अपने आप में एक सम्पूर्ण नगर है।

4 जून 2008 : प्रातःकालीन योग सत्र उन्हीं फुहारों के बीच, धूप–छांव की आँख मिचौनी, संगीतज्ञों का मधुर संगीत और योग–श्रेष्ठी का प्रेरणास्पद योग शिक्षण। जी चाहता था यह सत्र सारा दिन चलता रहे। तकनीकी विश्राम के लिए जहाज़ सायं 4 बजे हांगकांग पहुँचा परन्तु बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। अन्दर जहाँ चाहो घूमो। समाधान में भारत और विदेश से आने वाले साधकों के प्रश्नोत्तर चलते रहे। रात्रि साढ़े नौ बजे प्रस्थान हुआ।

5 जून 2008 : प्रातः योग सत्र अपने उसी अन्दाज़ में स्वामीजी के उद्‌बोधन के साथ और फिर दस बजे 'समाधान'। दोपहर 1 बजे चीन स्थित **ज़ियामन** पोर्ट पर जहाज़ आ लगा। 3000 वर्ष पुरानी यह बन्दरगाह *बौद्ध मन्दिरों और किलों के कारण विख्यात है।* क्रूज़ के कप्तान द्वारा रात्रि भोज दिया गया और 11 बजे हांगकांग के लिए प्रस्थान हुआ।

6 जून 2008 : प्रातःकालीन योग सत्र वर्षा और तेज़ हवा के बीच। परन्तु साधक अडिग। योग स्थिर रहना ही तो सिखाता है। दोपहर 2 बजे हांगकांग पर हमारा जहाज़ आ लगा। वर्षा में ही बसों द्वारा अपने होटल पहुँचे।

7 जून 2008 : प्रातराश के बाद होटल छोड़ना था। तीव्र वर्षा के कारण बहुत घूमना तो नहीं हुआ। परन्तु स्थानीय बस, ट्रेन और टेक्सी में बैठ नगर में भ्रमण का अवसर ज़रूर मिला। वर्षा के कारण पूर्व निर्धारित Disney Land आदि का भ्रमण सम्भव नहीं था। बसों द्वारा विमान पत्तन पहुँचने के बाद रात्रि ग्यारह बजे कैथे पैसिफ़िक की उड़ान CX753 से नई दिल्ली के लिए प्रस्थान हुआ।

इस योग यात्रा में पतंजलि योगपीठ के चार वैद्य भी उपस्थित थे जिन्होंने विभिन्न रोगियों को परामर्श भी दिया।

भारतीय दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान्, योग और आयुर्वेद के आधुनिक पुरोधा योग ऋषि स्वामी रामदेवजी, जिन्हें 'बाबा' कहकर भी पुकारा जाता है और जिन्हें विदेश की धरती पर Ambassador for Peace की उपाधि से भी समलंकृत किया जा चुका है, के साथ यह योग यात्रा और वह भी *सुपर स्टार वर्गो क्रूज़* पर अपनी गुणवत्ता और *'योगः कर्मसु कौशलम्'* (गीता 2/50) कुशलता पूर्वक काम करना ही योग है, का चिरस्मरण कराती रहेगी क्योंकि योग कर्मयोग है और योगी कर्मयोगी। ❑

–'वरेण्यम्', ए–1055, सुशान्त लोक–I, गुरुग्राम–122009 (हरियाणा)

कोलेस्टरॉलः आपके दिल का दुश्मन या दोस्त।

जी हां! आपने यही सुना होगा कि कोलेस्टरॉल ही सारी बीमारियों की जड़ है। खास तौर पर इसे दिल का दुश्मन कहा जाता है, क्योंकि हृदय आघात (हार्ट अटैक) के लिए यही ज़िम्मेदार होता है पर इस सच को भी नकारा नहीं जा सकता कि दिल का यह दुश्मन हमारे शरीर का दोस्त भी है। तो आईये इस दिल के दुश्मन की अच्छाइयों और बुराइयों पर एक नज़र डालें।

क्या है कोलेस्टरॉल?

कोलेस्टरॉल हमारे खून में पाया जाने वाला मोम की तरह का एक चिपचिपा पदार्थ है। दरअसल कोलेस्टरॉल वसा का ही एक रूप है। जिस तरह सर्दियों में देशी घी जमकर कठोर हो जाता है, ठीक उसी तरह वसा भी जमकर मोम की तरह कठोर रूप ले लेता है। जिसे कोलेस्टरॉल कहा जाता है। कोलेस्टरॉल को जानने से पहले लिपोप्रोटीन को समझना बेहद ज़रूरी है।

लिपोप्रोटनि क्या है।

प्लाज़्मा (खून में पाया जाने वाला एक तरह का पदार्थ) में पांच प्रकार के प्रोटीन (लिपिड्स) होते हैं। ट्राई ग्लिसेरॉइड्स (Triglycerides) फास्फोलाइड्स (Phospholides), फ्री कोलेस्टरॉल (Free Cholesterol), कोलेस्टेरियापी ईस्टर्स और फ्री फैटी एसिड (Free Fatty Acid)। एलब्युमिन इसमें से पहले चार लिपिड्स प्रोटीन या एल्युमिन से मिले होते हैं, उन्हें लिपोप्रोटीन कहते है। अत्यधिक फैट्स और शर्करायुक्त पदार्थों के सेवन से इनमें वृद्धि होती है। मधुमेह (डायबिटीज़) के रोगी के शरीर में इसकी उत्पत्ति अधिक होती है। प्लाज़्मा में जब लिपोप्रोटीन अधिक हो जाता है, तो पाचनशक्ति मन्द पड़ जाती है और स्रोतोरोध (atherosclerosis) की उत्पत्ति होती है। लिपोप्रोटीन वसा कणों की मात्रा के आधार पर कोलेस्टरॉल के पांच प्रकार किये गये हैं।

स्वस्थ शरीर में कितनी होती है कोलेस्टरॉल की मात्रा?

एक स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में कुल मिलाकर 140 मिलीग्राम कोलेस्टरॉल होता है। इसमें से 70 प्रतिशत कोलेस्टरॉल हमें भोजन के जरिये मिलता है। शेष 30 प्रतिशत कोलेस्टरॉल शरीर की कोशिकाएं और लिवर तैयार करता। एक स्वस्थ व्यक्ति का लिवर (यकृत) प्रतिदिन लगभग 20 मिलिग्राम कोलेस्टरॉल का निर्माण करता है।

नवजात शिशु में लगभग 70 मिलीग्राम प्रति डेसीलिटर कोलेस्टरॉल रहता है। दस माह का होते यह स्तर 150 मिलीग्राम प्रति डेसीलिटर तक पहुँच जाता है। इसके बाद लगभग 15–16 वर्षों तक कोलेस्टरॉल के स्तर में परिवर्तन नहीं आता पर यदि खानपान पर ध्यान नहीं दिया गया तो लिवर विकार के चलते कोलेस्टरॉल का स्तर गड़बड़ा सकता है। स्वस्थ व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण कोलेस्टरॉल और एचडीएल कोलेस्टरॉल का स्तर 5:1 के अनुपात में होना चाहिए। स्वस्थ वयस्क व्यक्ति का कोलेस्टरॉल स्तर 200 मिलीग्राम प्रति डेसीलिटर रहता है। इस लिहाज से एक स्वस्थ व्यक्ति में एचडीएल कोलेस्टरॉल का स्तर 50 मिलीग्राम प्रति डेसीलिटर होना चाहिए। वैसे यदि एचडीएल कोलेस्टरॉल का स्तर कुछ अधिक हो तो घबराने की कोई बात नहीं है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि जिन व्यक्तियों में कोलेस्टरॉल का स्तर 200 मिलीग्राम के नीचे है वह सामान्य स्थिति में है। उनमें हृदयरोग की कोई गुंजाइश नहीं है। 200 से 400 मिलीग्राम वाले उच्च कोलेस्टरॉल के समूह में आते हैं। 500 से 1000 तक उच्चतम कोलेस्टरॉल समूह में गिने जाते हैं और 1000 मिलीग्राम से अधिक स्तर पाया जाना अत्यन्त खतरनाक हो सकता है।

कोलेस्टरॉल का बढ़ना बेहद खतरनाक

कोलेस्टरॉल बढ़ने से हृदय धमनियों में एथिरोक्लेरॉसिसि (धमनियों का सख्त होना) विकार पैदा हो जाता है। शरीर में बढ़ा हुआ कोलेस्टरॉल धीरे–धीरे रक्त धमनियों में जमने लगता है। इसका स्तर जब अधिक हो जाता है तो रक्त संचार में रुकावट आने लगती है। रक्त की इस रुकावट को दूर करने के लिए हमारे हृदय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है। हृदय धमनी में रक्त संचार में रुकावट आने पर सीने में भयंकर दर्द होता है। दिल के दौरे का यह संकेत है।

कोलेस्टरॉल बढ़ने से खून में थक्का (Bloodspot) बनने की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। इन थक्कों के कारण धमनी में जब रक्त प्रवाह रुक जाता है तो दिल का दौरा पड़ जाता है। मस्तिष्क की नसों में इस थक्के के कारण रक्तसंचार रुक जाता है और ब्रेनहैमरेज (मस्तिष्क रक्ताघात) के चलते व्यक्ति के दिमाग की नसें फट

जाती हैं। इसमें रोगी को बचा पाना बेहद मुश्किल हो जाता है। कोलेस्टरॉल की अधिकता से पित्त की थैली में पथरी बनती है जिसके चलते व्यक्ति को अपचन की शिकायत हो जाती है। कोलेस्टेरॉल बढ़ने से चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती है। थकान महसूस होती है। चेहरे पर बुढ़ापा झलकने लगता है।

किन व्यक्तियों में कोलेस्टरॉल बढ़ने का खतरा रहता है?

जो व्यक्ति एक ही जगह बैठकर काम करते हैं, पैदल कम चलते हैं और किसी प्रकार श्रम, व्यायाम नहीं करते, ऐसे व्यक्तियों में कोलेस्टरॉल बढ़ने का खतरा बना रहता है। स्थूल शरीरवाले, मधुमेह और उच्च रक्त चाप (हाई ब्लडप्रेशर) के रोगियों में कोलेस्टरॉल बढ़ जाता है। अधिक मांस और अण्डे का सेवन करने वाले व्यक्तियों में कोलेस्टरॉल बढ़ने की सम्भावना प्रबल होती है। तेल, घी, पनीर, मक्खन, ढोकला जैसे चिकनाईवाले पदार्थों का अधिक सेवन करने वाले व्यक्तियों में कोलेस्टरॉल बढ़ जाता है। सिगरेट, शराब और मादक पदार्थों का अधिक सेवन करने वाले व्यक्तियों के रक्त में कोलेस्टरॉल की मात्रा बढ़ जाती है।

कोलेस्टरॉल बढ़ने में अनुवांशिकता की भी अहम भूमिका होती है। जिन व्यक्तियों के माता–पिता या पितामह में हृदय रोग की शिकायत होती है ऐसे व्यक्तियों में अनुवांशिक गुणों के चलते कोलेस्टरॉल कम कैसे करें?

कोलेस्टरॉल की मात्रा हमारे भोजन से ही अधिक मिलती है। अत: कोलेस्टरॉल कम करने के लिए सबसे पहले भोजन में चर्बी की मात्रा कम करें। भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और वसा की सन्तुलित मात्रा लें। मूंगफली, सरसों, सोयाबीन, तिल, सूरजमुखी आदि तेलों का इस्तेमाल करें परन्तु नारियल तेल, डालडा आदि से परहेज़ करें।

दूध से मलाई निकलवाकर सेवन करें: अंडे का सेवन ज़र्दी निकालकर करें। अंडे की ज़र्दी में लगभग 275 मिलीग्राम कोलेस्टरॉल रहता है। यदि आप मांसाहारी हैं तो मछली, मुर्गी का सीमित मात्रा में आहार करें। अंडे, कलेजी और चौपाया जानवरों के मांस का उपयोग न करें। कलेजी में कार्बन पाया जाता है जिससे कोलेस्टरॉल बढ़ता है। चौपाया जानवरों के मांस में चर्बी अधिक होती है। झींगा और बकरे के मांस का सेवन कम करें।

यदि आप धूम्रपान के शौकीन है तो फिल्टर सिगरेट का उपयोग करें। सिगरेट की मात्रा कम कर दें। सिगरेट के बजाय हुक्का पीना ठीक रहेगा क्योंकि हुक्का में पानी से छनकर तम्बाकू का धुंआ शरीर में प्रवेश करता है।

शराब पीने वाले शराब पीना छोड़ दें । जौ आदि अनाज से बनी बीयर से कोलेस्टरॉल का स्तर बड़ी तेजी से बढ़ता है। महुए अथवा अंगूर से बनी शराब में बीयर की अपेक्षा कम कोलेस्टरॉल होता है। फिर भी आपके ऊपर है कि आपको स्वास्थ्य अधिक प्रिय है या शराब, सिगरेट।

कोलेस्टरॉल कम करने के लिए नियमित रूप से व्यायाम करें। चार-पांच किलोमीटर प्रतिदिन पैदल चलें। पानी में तैराकी करें। यदि उच्च रक्तचाप की शिकायत हो, तो तैराकी न करें और तैराकी में रक्त संचार बड़ी तेजी से परिवर्तित होता है। यदि आप व्यायाम करते हैं और तब सिगरेट नहीं पीते, तो आपके शरीर में एचडीएल कोलेस्टरॉल की मात्रा बढ़ जाती। एचडीएल कोलेस्टरॉल रक्त धमनियों में एलडीएल कोलेस्टरॉल को जमने से रोकता है। मछली के तेल का सेवन करने से भी कोलेस्टरॉल कम होता है। दरअसल मछली के तेल में 'ओमेगा 3' नामक एक फैटी ऐसिड (वसीय अम्ल) पाया जाता है, जो रक्त धमनियों को मुलायम बनाता है। इसके प्रभाव से एलडीएल कोलेस्टरॉल रक्त धमनियों में जमने नहीं पाता। 'ओमेगा 3' के प्रभाव से कोलेस्टरॉल पिघलकर रक्त में नहीं घुलने पाता।

ताज़े फल और सब्ज़ियों का सेवन खूब करें। यदि दमा (अस्थमा) की शिकायत हो, तो तरबूज़, खरबूज़ा और सन्तरे जैसे कफ़कारी फलों का सेवन नहीं करना चाहिए। अपनी उम्र के अनुसार, अपने कार्य को देखते हुए भोजन में सीमित कैलोरी वाले खाद्य पदार्थों का उपयोग करें। यदि आपका भार आवश्यकता से अधिक हो तो कैलोरी की मात्रा घटा दें। मानसिक तनाव से बचें। सम्भव हो तो प्रतिदिन भोर में या फिर शाम को योग करें अथवा एकाध घंटा पूजा पाठ, ध्यान, चिन्तन करें। इससे मन हल्का रहेगा। अपनी रोजमर्रा की दिनचर्या को डायरी में लिख लें। सारे काम समय पर करें। ऐसा न करने पर कुछ काम अधूरे रह जाते हैं और उन्हें पूरा करने की चिन्ता में मानसिक तनाव बढ़ता है। रक्त संचार बढ़ जाता है। इस चिंता में सिगरेट, शराब का अधिक सेवन करके लोग अपने शरीर में कोलेस्टरॉल को बढ़ने का मौका देते हैं। बाजार में कोलेस्टरॉल घटाने वाली दवाएँ मौजूद हैं पर इनका सेवन बिना डाक्टरी सलाह के न करें। ❑

संकलित

मैं भाग्यशाली हूँ

हम भारवासी कर्म के सिद्धान्त को मानकर चलते हैं अर्थात् हम भाग्यवादी है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूर्व जन्म में हमने अच्छे या बुरे जो भी कर्म किये हैं उनका फल इस जन्म में अवश्य मिलेगा। इस प्रकार हमारी भाग्य लिपि पहले ही लिख दी गई है। इस जन्म में किये गये कर्म उनमें कोई अन्तर नहीं ला सकेंगे। यह सिद्धान्त हमें भाग्यवादी बनाकर परिश्रम से विमुख करता है अथवा मुसीबतों के समय भाग्यलिपि को अमिट मानकर उन्हें धैर्य पूर्वक सहने की प्रेरणा देता है यह बहस का विषय हो सकता है। किन्तु भाग्य कहीं कुछ होता है ऐसा विश्वास सदियों से अनेक लोग करते आये हैं।

किन्तु प्राय: देखने में आता है कि कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक ही भाग्यशाली होते हैं एवं वे जिस काम में हाथ डालते हैं सफलता उनके कदम चूमती है। क्या ऐसा केवल पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के कारण ही होता है अथवा इसका कोई और कारण भी है?

रिचर्ड वाइज मैन नामक एक मनोवैज्ञानिक ने इस क्षेत्र में गहन शोध की एवं कुछ निष्कर्ष निकाले। उन्होंने समाचार पत्रों में विज्ञापन दिया एवं ऐसे व्यक्तियों से प्रार्थना पत्र आमंत्रित किये जो निरन्तर भाग्यशाली सिद्ध हो रहे थे अथवा लगातार दुर्भाग्य के शिकार थे। विज्ञापन के उत्तर में 18 वर्ष से 84 वर्ष की आयु वाले व्यक्तियों के लगभग चार सौ प्रार्थना पत्र प्राप्त हुए। अगले दस वर्ष तक इन व्यक्तियों के साक्षात्कार लिये गये, उनसे डायरी रखने को कहा गया एवं प्रयोगशाला में उन पर प्रयोग किये गये। इस शोध के जो निष्कर्ष निकले वे निम्न प्रकार के थे–

भाग्यशाली व्यक्तियों में अवसर को पहचानने एवं उसका उपयोग करने की अद्‌भुत क्षमता थी, उनका दृष्टिकोण सदैव आशा से पूर्ण एवं सकारात्मक था एवं वे निरन्तर कड़ी मेहनत करके दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदल देने के लिये कटिबद्ध रहते थे।

(शेष पृष्ठ 58 पर)

अमर फल की यात्रा

❑ डॉ. कानन झींगन

भर्तृहरि की घोर आसक्ति से वैराग्य की यात्रा के पीछे एक अमर फल था। एक साधु को दिव्य फल प्राप्त हुआ, जिसे खाकर व्यक्ति अमर हो जाए। उसने प्रजापालक राजा को उपयुक्त पात्र समझा। राजा भर्तृहरि अनिंद्य सुन्दरी पिंगला से प्रेम करते थे। उसके बिना अमरत्व का क्या लाभ। सो उन्होंने फल उसे दे दिया। पिंगला राज्य के अश्वपाल में आसक्त थी। अपने प्रेमी को अमर करने के लिए यह फल उसे सौंप दिया। अश्वपाल एक वेश्या का दीवाना था। वेश्या ने वह फल ले तो लिया पर सोच पड़ गई। देह को जीविका का साधन बनाने वाली मुझ वेश्या की अमरता का अर्थ है पाप को सदा के लिए जीवित रखना। देश का राजा विद्वान् है, जनता का कल्याण करता है वही इसका अधिकारी है। दूसरे दिन दरबार में जाकर अमर फल राजा को भेंट किया और अपने भाव व्यक्त किए। भर्तृहरि का मन उसी फल को फिर से पा कर उचाट हो गया। सांसारिक प्रेम कितना निराधार है। पिंगला से तो विरक्त हुआ ही, संसार से भी वैराग्य हो गया। हताशा में वे कह उठे–

यां चिन्त्यामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यिमच्छति जनं सजनोन्यसक्तः।
अस्मत्कृतेच परिशुष्यति काचिदन्यः,
धिक तां च तं च मदनं चेमां च।।

अर्थात्, जिसके बारे में निरंतर मैं सोचा करता था, वह मेरे प्रति विरक्त है, वह जिसकी इच्छा करती है, वह व्यक्ति किसी अन्य पर आसक्त है, वह किसी दूसरे के लिए दुखी है–उन सब को, कामदेव को और मुझ को धिक्कार है। उनकी नश्वर सौंदर्य और चंचल मोह के प्रति आसक्ति नष्ट हो गई। उन्हें लगा व्यर्थ ही कवि निन्दनीय रूप की प्रशंसा करते हैं। सौन्दर्य के उपमान झूठे हैं। वास्तविकता कुछ और है। विषय वासनाएं हम को ही अन्त में भोजन बना लेती हैं। चिरकाल से जो कुछ संचित था, आखिर में दुख देने वाला सिद्ध हुआ। आशा की नदी में, कामनारूपी जल, तृष्णा की तरंगे, अनुराग का मगरमच्छ, अज्ञान का भंवर–इन सबसे केवल

विवेक ही बचा सकता है। विवेक के साथ वैराग्य की भावना अनिवार्य है। वही सब प्रकार के भय से मुक्त करता है। मनोविज्ञान कहता है कि वैराग्य के जन्म के पीछे अतिशय राग की प्रतिक्रिया है। इसी प्रकार अत्यधिक ऐश्वर्य और सुख भोग से भी विरति हो जाती है। विदेशों में इस प्रतिक्रिया के उदाहरण प्राय: मिलते है। ऐशो-आराम छोड़ कर वे लोग तीसरी दुनिया के कष्ट सहने में आनंद अनुभव करने वाले ऐसे ही वैरागी हैं। प्राकृतिक आपदाएं, प्रियजन की मृत्यु, धन की हानि, प्रेम में छल आदि स्थितियां मनुष्य को विरक्ति की ओर ले जाती हैं। धीरे-धीरे समय इन घावों को भर देता है तो वैराग्य फिर राग में बदल जाता है। परन्तु एक ठोकर खाने के बाद यदि चिन्तन और ज्ञान का आधार मिल जाए, तो यह विरक्त मानसिकता स्थाई हो जाती है। भर्तृहरि तत्वज्ञानी थे तभी तो अमर फल की यात्रा ने उन्हें वैराग्य का मंज़िल पर पहुँचा दिया। ❑

– 48, स्वास्तिक निकुंज, सैक्टर 13, रोहिणी, दिल्ली-110085

(पृष्ठ 56 का शेष भाग)

एक विशेष बात यह भी पाई गई कि भाग्यशाली व्यक्तियों की सोच सकारात्मक थी एवं वे दुर्भाग्य में भी सौभाग्य की तलाश करते थे। एक बैंक में एक बार ऐसे समय पर डकैती पड़ी जब वहाँ कई ग्राहक मौजूद थे। डकैतों ने गोली भी चलाई जों वह एक व्यक्ति की बाँह को छूती हुई निकल गई। बाद में जब इन व्यक्तियों के इन्टरव्यू लिये गये तो अधिकांश व्यक्तियों ने कहा कि यह उनका दुर्भाग्य था कि वे ऐसे समय पर बैंक में मौजूद थे जब वहाँ डाकू आ गये। किन्तु एक सौभाग्यशाली का कथन था कि उसका भाग्य अच्छा था कि गोली उसकी बाँह को छूती हुई निकल गई अन्यथा वह उसके सीने में भी लग सकती थी। ❐

संकलित

स्वतन्त्र दास

❑ बने चन्दर मालू

भारतीय संस्कृति को शिखर तक पहुँचाने का श्रेय हमारे ऋषि, महर्षि, महात्माओं व ज्ञानीजनों को जाता है तथा उसको सुरक्षित रखना प्रत्येक देशवासी का धर्म है। जो संस्कृति हमें विरासत में मिली है उसकी रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

भारत सदियों, सदियों तक विदेशी शासकों के अधीन रहा–पहले कितनी सदियों तक यवनों के शासन में तत्पश्चात् लगभग दो सदी तक अंग्रेजों की हुकूमत में। परन्तु उनकी संस्कृति हमें प्रभावित नहीं कर पाई। हमारी संस्कृति की जड़े इतनी मज़बूत थीं कि उसे वे नष्ट नहीं कर सके। हमारे रहन–सहन का तरीका, काफ़ी हद तक हमारा पहनावा, हमारे ब्याह–शादियों के रीति–रिवाज, आमोद–प्रमोद के तरीके, उत्सव, मेले, मगरिये आदि–आदि सब हमारी अपनी शालीन संस्कृति के अनुरूप थे।

परन्तु देखता हूँ सन् सैंतालीस के बाद हम आज़ाद क्या हो गये–कई मानों में आज़ादी का अर्थ हमने अपनी शालीन संस्कृति को नष्ट कर पाश्चात्य संस्कृति के पुरज़ोर अन्धानुकरण के रूप में लगा लिया है। परिणामत: बिना सोचे समझे हमने अपने आपको ऐसी आग में झोंक दिया है जिससे हमारी सनातन संस्कृति तो झुलस कर राख हो रही है, हमारी वर्तमान और भावी नैतिकता भी रसातल में जा रही है। सब तरफ़ सब तरह की मर्यादाएं टूट रही हैं।

पारिवारिक मर्यादाएं टूट रही हैं। परिवार में छोटे बड़े का भेद समाप्त हो रहा है। आज घर में बड़ों का आदर यदि कहीं देखने को मिलता है तो उसे अनुकरणीय कहते हैं जब कि वह तो हमारी संस्कृति का अभिन्न रूप था, अपवाद नहीं।

सामाजिक मर्यादाएं समाप्त हो रही हैं। हमारी मूल संस्कृति में सामाजिक रहन–सहन की आपसी व्यवहार की मर्यादाएं थीं, उनको भंग करने पर तिरस्कार का भय था। गांव गली के बड़े बुज़ुर्ग तब सब जन के अभिभावक थे और वे सब जन पर प्रभावक थे। परन्तु आज वह प्रभाव केवल पुरातन इतिहास बन कर रह गया है। विद्यालय में अध्यापक का जो आदर सम्मान था, माता–पिता से भी भी बढ़ कर उन

गुरुजन का बहुमान था। आज पाश्चात्यता का प्रभाव कहें या स्वतंत्रता की हवा का झोंका कहें, वह आदर सम्मान का पर्दा उड़ कर चीर चीर हो गया है और किस तरह से अध्यापकों के सामने धूम्रपान करने की बातें, सामने पलट जवाब देने की बातें व अन्य उच्छृंखल हरकतें आम बात हो गयी हैं।

विवाह शादियों में एवं अन्य अवसरों पर दो तरह की प्रवृत्ति विशेष हावी हो रही है-

एक तो प्रदर्शन आडम्बर की पराकाष्ठा और दूसरी आजकल के वैवाहिक गीत सम्मेलन।

पहली बात लें–हर कोई दूसरों से उत्कृष्ट खर्चीले आयोजन की होड़ की घुड़दौड़ में आगे निकलना चाहता है। इसे युक्तिसंगत सिद्ध करने के लिए यह तर्क दिया जाता है कि आज किसी के पास सम्पन्नता है तो क्यों नहीं वह अपने मन की निकाले।

बस यहीं सामाजिक मर्यादा की दीवार टूटती है। हां, हो सकता है करने वाला समर्थ है और इसी लिए वह कर रहा है, परन्तु सामाजिक मर्यादा का भान होने पर उसे इसलिए संयम रख कर दिखावे से दूर रहना होगा कि इससे अन्य लोगों में एक होड़ की प्रवृत्ति जगेगी तथा दूसरे, प्रदर्शन एवं आडंबर में खर्च किया हुआ रुपया केवल अहं का पोषण करेगा कि समाज में मेरी हैसियत का दबदबा बढ़ेगा। जब कि आज भी कुछ अपवाद रूप में उदाहरण हैं जो तथाकथित हैसियत वालों से कई–कई गुना अधिक हैसियत वाले हैं पर प्रदर्शन के अहं का कीड़ा उनके रक्त में ही नहीं है। उदाहरण के तौर पर जानीमानी आई.टी.कम्पनी इन्फोसिस के मालिक नारायणमूर्ति, टाटा समूह के मालिक रतन टाटा आदि। इनके सामने नवोदित कुबेरपति तो किसी कोने में भी नहीं आयेंगे पर दम्भ प्रदर्शन में सम्भवत: Dintinction marks लेंगे।

परोक्ष में देखें तो नारायणमूर्ति या रतन टाटा की ख्याति उनकी सादगी या प्रदर्शन–आडम्बर न करने से क्या कम हुई है? क्या वे भर्त्सना के पात्र हुए हैं? क्या लोग उन्हें ग्लानि या तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं? नहीं, बल्कि द्विगुणित आदर की दृष्टि से देखते हैं, एक अनुकरणीय उदाहरण के रूप में इज्ज़त देते हैं। जब कि हमारे समाज के दम्भ प्रदर्शन के बारे में पीठ पीछे भौंडे प्रदर्शन की संज्ञा देकर सब निन्दा करते हैं।

ऐसा इसलिए भी होता है कि इस दम्भ प्रदर्शन और आडम्बर में खर्ची राशि का शतांश भी निर्लिप्त दान में नहीं देते हैं। दान भी पांच का देंगे तो भावना यह रहेगी (या यों कहें मूक शर्त यह होगी) कि पच्चीस का नाम होना चाहिए, सब समाचार

पत्रों, टी.वी. एवं अन्य मीडिया में वाह वाह के नगाड़े बजने चाहिए। जब कि बिल गेट्स एवं वारेन बफेट जैसे दुनिया के धनाढ्यतम व्यक्तियों ने खरबों की सम्पत्ति का दान कर स्वयं के अहं का पोषण हो–यह चाह नहीं रखी।

कहाँ हम भारतवासी अपरिग्रह एवं अनासक्ति के प्रवर्तक भगवान महावीर, गौतम बुद्ध के देश के कहां वे जो गौतम बुद्ध–भगवान महावीर को सम्भवत: विशेष जानते भी नहीं होंगे।

अन्तरावलोकन की आवश्यकता तो है पर उसके लिए प्रथम सोपान मैं ही मैं दीखूँ का व्यामोह छूटे तो। प्राय: द्रष्टव्य तो यह है कि किसी आयोजन का अध्यक्ष या प्रधान भी उसी को बनाने की अलिखित रीति रहती है जो उस आयोजन का खर्चा वहन करे या स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि मानसिकता भी यही रहती है कि हम आयोजन का चन्दा भी तभी देंगे जब हमें यह **सम्मान** मिले।

दूसरी–जैसा कि मैंने ऊपर थोड़ा जिक्र किया–निर्लिप्त दान यानि बिना नाम की भूख के दान की प्रवृत्ति का लोप। हम समाज के अंग है, समाज में सब बराबर हो नहीं सकते। आज हम समर्थ हुए हैं तो बिना अहसान दिखाने की भावना के। हमें समाज में अच्छा खासा पैसा समाजोपयोगी कार्यों में लगाना चाहिए–यह हमारा कर्त्तव्य तो है ही दायित्व है–यह समझ कर। कहां है यह भावना ? भावना सिर्फ एक है हम समर्थ हुए हैं तो अपनी बुद्धि से हुए हैं (चाहे हुए हों नाना तिकड़मों से–हां बुद्धि उसमें भी लगती है)। क्यों न हम आगामी सात पीढ़ी का बन्दोबस्त करके जायें। उस की परिभाषा या परिणाम क्या है–न तो वे स्वयं जानते हैं, न और कोई और इसी **पवित्र** उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवन भर एक ही दृष्टिकोण से कोल्हू के बैल की तरह भागे जा रहे हैं, भागे जा रहे हैं। जीवन की सारी क्रियाएं एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती हैं कि शाम को सोने से पहले यह तलपट मिलाना ज़रूरी है कि आज हमारी सम्पन्नता का ग्राफ़ कितना ऊँचा गया।

और इस चक्रव्यूह में–

- ❒ स्वयं का स्वास्थ गौण।
- ❒ परिवार का परिवेश गौण।
- ❒ सामाजिकता की तो खैर कोई प्राथमिकता ही नहीं है।

होता यह है–

- ❒ खाने के लिए कमाते हैं, खाने की फुरसत नहीं।
- ❒ परिवार के लिए कमाते हैं परिवार के साथ मिल–बैठकर दो घड़ी बिताने का समय नहीं।

❒ आराम से जीने के लिए कमाते हैं पर वह घड़ी कब आयेगी जब दो घड़ी आराम कर सकें, पता नहीं।

परिणाम–

❒ रात दिन धन कमाने में स्वास्थ्य खोते हैं, फिर खोया स्वास्थ्य पाने को वही धन खोते हैं। पर अकसर पा नहीं पाते, जीवन भर नाना व्याधियों के चलते रोते ही रहते हैं।

❒ सात पीढ़ी की चिन्ता करते हैं, पर उनकी चौथी पीढ़ी को भी उनका नाम याद नहीं रहेगा।

जबकि बिल गेट्स एवं वारेन बफेट जैसों का नाम उनकी सातवीं पीढ़ी ही नहीं दुनिया की सातवीं पीढ़ी आदर से लेगी।

तो यह सब कहने का तात्पर्य है हम हमारी मूल संस्कृति से हटकर, उसे ताक पर रख कर अन्धानुकरण की अन्धी आन्धी में अग्रगण्य बनने की स्पर्द्धा में जीवन नष्ट न करें।

अब देखते हैं हमारे वैवाहिक गीत सम्मेलनों को–

आजकल के गीत सम्मेलन। आंखों के सामने देख रहे हैं आज के हमारे गीत–सम्मेलन हमारी पावन संस्कृति पर बेलन हैं। हम सब जानते हैं उनमें घर के छोटे–छोटे अबोध बालक–बालिकाओं, जिनके होठों का दूध भी नहीं सूखा होगा, से किस तरह की फिल्मी इश्की धुनों पर हाव–भाव सहित नृत्य कराया जाता है, जिन्हें उस माने में इश्क शब्द का अर्थ मालूम होने का तो प्रश्न ही नहीं है, लेकिन उनके पैर हाव–भाव–भंगिमा जैसे इश्क के गाने में फिट बैठें, इसकी रिहर्सल करायी जाती है।

इसी तरह खुले आम हमारे घर के किशोर–किशोरियों, बहू–बेटियों को भी इस तरह के फूहड़ गानों पर थिरकने को प्रेरित किया जाता है और मज़े की बात यह है कि हम सब, हाँ हम सब उनकी अदाओं पर तालियों की गड़गड़ाहट कर इस तरह खुशी ज़ाहिर करते हैं मानों इससे हमारी प्रतिष्ठा में चार चाँद लग रहे हैं। कहाँ गये हमारे वे प्यारे प्यारे पारिवारिक मीठे गीत?

अब देखें हमारी आज की युवा पीढ़ी के मनोरंजन के तरीके–सम्पन्न युवा पीढ़ी की आधुनिकता की पहली आवश्यक शर्त है उसका डिस्को क्लब का सदस्य होना जिसकी फ़ीस सम्भवत: लाखों में होगी और वहाँ जा कर मन्द प्रकाश में ज़ोर शोर से बज रहे पाश्चात्य इश्की गाजे बाजे की धुनों पर सब मर्यादाओं को ताक पर रख कर किसकी कमर में किसका हाथ डाल कर बेहूदा तथाकथित डान्स करना और वहां से टूटती मर्यादाओं के दरवाज़े आगे की सब हरकतों के लिए खुल जाते हैं। मद्यपान से लेकर न जाने कहां तक गन्तव्य का छोर होता है पता नहीं।

प्रश्न है–क्या यही है प्रगति ? क्या यही है सम्पन्नता की परिभाषा ? जिसका परिणाम–टूटते परिवार ही नहीं, गिरते कांच की गिलास की तरह चकनाचूर होते पति–पत्नी के रिश्ते, माँ–बाप के प्यार को तरसते आया की गोदी में पलते नन्हें नन्हें बच्चे, जीवन का सब कुछ न्यौछावर कर बच्चों को पाल–पोस कर, लिखा–पढ़ा कर बड़े करने वाले अब उनके सहारे को तरसते जीवन की बुझती शम्मा को टिमटिमाते असहाय वृद्ध माँ–बाप।

और इस आपा–धापी में जीवन का असली आध्यात्मिक ध्येय तो शायद किसी को पता ही नहीं–और कोई उन्हें बताने की कोशिश भी करे तो उनकी तथाकथित तीक्ष्ण (Sharp) बुद्धि की परत तक को नहीं छू पायेगी।

यह है गौरव–गरिमामय भारतीय संस्कृति का आधुनिकृत रूप।

परिणाम–कितनी कितनी पाश्विक बर्बर यातनाएँ झेलकर अपने अमूल्य जीवन की कुर्बानियाँ देकर कितने मंगल पांडे, भगतसिंह, विनय–बादल–दिनेश, चन्द्रशेखर आज़ाद आदि–आदि तथा जलियांवाला बाग में निर्मम अंग्रेज़ों की अंधाधुंध गोलियों से भूने जाने वाले अनगिनत अनेक भारतीय वीरों ने शहीद होकर यह तथाकथित राजनैतिक स्वतन्त्रता छ:दशक पूर्व हासिल की और आज इस अवधि में हम फिर द्रुतगति से दौड़–दौड़ कर उन्हीं गोरी चमड़ी वालों की कुत्सित संस्कृति की दासता की जंजीर में बंध ही नहीं गये अपितु स्वयं उससे दिन–ब–दिन अपने आप को ज़ोर से जकड़ रहे हैं।

समय आ गया है हम सब इन परिस्थितियों पर खुले दिमाग से एक स्वस्थ चिन्तन करें। ❑

–5–बी, ''श्रीनिकेत'' 11, अशोका रोड, कोलकाता–7000 027

पाठक–प्रतिक्रिया

मान्यवर,

'ज्ञान–प्रभा' के जुलाई से सितम्बर 2008 अंक में मेरी काव्य रचना 'भीड़ में कोई आदमी नहीं था' प्रकाशित की उसके लिए आभार। इसकी सुचर्चा मुझे कई हितैषी पाठकों से मिली, मेरा उत्साहवर्द्धन हुआ।

'ज्ञान–प्रभा' भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान में जो साहित्य सेवा कर रही है उसे पढ़कर आत्मतुष्टि तो होती ही है। विश्वास है हम अपने मिशन में अवश्य सफल होंगे। पुन: सादर।

– बनेचन्द मालू

अमेरिकी सब प्राइम संकट

❑ आर. के. श्रीवास्तव

सब प्राइम संकट को समझने के लिए यह जानन ज़रूरी है कि सब प्राइम क्या है। अमेरिका में ऋणों का मानक तय करने वाले संस्थानों ने इसे तीन श्रेणियों में बाँटा है। सर्वप्रथम **ए.ए.ए. श्रेणी** का ऋण अर्थात् **प्राइम ऋण।** इसमें जोखिम सब से कम होता है। अर्थात् इसे ब्याज सहित चुकता करने में न्यूनतम संदेह है। इसके बाद आता है''**आल्ट ए**''अर्थात् आल्टरनेटिव ए श्रेणी जिसमें ऋण को ब्याज सहित चुकता करने में अधिक संदेह होता है। इसमें ऋण लेने वाले की जाँच की जाती है। तीसरी श्रेणी है **'सब प्राइम'** ऋण इसमें भुगतान का जोखिम सबसे अधिक होता है क्योंकि इसमें ऋण लेने वाले की पूरी तरह जांच नहीं की जाती व उन लोगों को भी ऋण दे दिया जाता है जो पहले भी लिए हुए ऋण की अदायगी ठीक प्रकार से नहीं कर पाये। ऋण की अदायगी सुनिश्चित् करने के लिए प्राय: ऋण लेने वाले की सम्पत्ति ज़मानत के तौर पर गिरवी रख ली जाती है। इसमें दिये जाने वाले ऋण का ब्याज परिवर्तनीय होता है। प्रारम्भ में ब्याज कम अर्थात् 2 प्रतिशत रहता है व बाद में बढ़कर कभी–कभी 30 प्रतिशत तक चला जाता है। अत्यधिक ब्याज जोखिम की भरपाई के लिए लगाया जाता है। सब प्राइम ऋण देने वाले व लेने वाले दोनों के लिए घातक हो सकता है।

सब प्राइम ऋण आरम्भ करने के दो प्रमुख कारण थे। पहला कारण था अमेरिकी बाज़ार में पूंजी की प्रचुरता एवं अति उत्पादकता। इसके परिणाम स्वरूप प्राइम व आल्ट ए ऋण देने के बाद भी बाज़ार में भारी मात्रा में पूँजी बच जाती थी। इस पूँजी का संचरित करना उनके लिए आवश्यक था। इसके अतिरिक्त उत्पादित माल की बिक्री भी आवश्यक थी। दूसरा कारण था 25 प्रतिशत अमेरिकी जनता की क्रेडिट रेटिंग का कम होना। इसके कारण उसे ऋण देना जोखिम भरा कार्य था। अमेरिकी वित्तीय बाज़ार इतनी अधिक जनता को छोड़ नहीं सकता था। अत: 'सब प्राइम' ऋण की शुरुआत हुई। आरम्भ में दिखाने के लिए यह कहा गया कि यह

जनता के हित में है क्योंकि ऋण का पात्र न होते हुए भी उसे ऋण दिया जा रहा है। इसके अलावा प्रारम्भ में ऋण की दर कम रखी गई जिससे अधिक से अधिक जनता आकर्षित हो सके। ऋण की अदायगी को सुनिश्चित् करने के लिए ऋण लेने वाले की किसी सम्पत्ति को ज़मानत के तौर पर गिरवी रखा गया। जनता को यह तो बताया गया कि ऋण का ब्याज परिवर्तनीय है किन्तु यह स्पष्टरूप से नहीं बताया गया कि उसका ब्याज बहुत बढ़ सकता है। कई बार ब्याज की दर बढ़कर 30 प्रतिशत तक पहुँच गई। प्रारम्भ में ब्याज की दर कम होने के कारण सब प्राइम ऋण लेने वालों की संख्या में तेज़ी से वृद्धि हुई।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सब प्राइम ऋण का आरम्भ पूँजी की प्रचुरता के कारण हुआ। अत: यह जानना आवश्यक है कि यह पूँजी की प्रचुरता कहाँ से व क्यों आई। वास्तव में 1995 से स्टाक मार्केट में एक बूम आया। इस समय स्टाक मार्केट में एक नई प्रकार की कम्पनियों ने प्रवेश किया। इन्हें डॉटकाम कम्पनियाँ कहा गया। ये कम्पनियाँ वेंचर या आरम्भिक पूँजी पर निर्भर करती थीं। आरम्भ में इन कम्पनियों को हानि होती थी किन्तु ये कम्पनियाँ डॉटकाम टेक्नोलॉजी द्वारा ब्राण्ड जागरूकता पैदा करती थीं तथा अपने उत्पादों व सेवाओं के लिए लाभदायक कीमतें वसूल करती थीं। इन्होंने सट्टेबाजों की सहायता से अपने शेयरों का मूल्य बहुत अधिक बढ़ाया। इन शेयरों का वास्तविकता सम्पत्ति से कोई लेना देना नहीं था। प्राय: ये शेयर वास्तविक अर्थव्यवस्था में काम करने वाली कम्पनियों से बहुत अधिक मूल्य के होते थे। इस प्रकार ऊँचे दामों में शेयरों को दिखाकर ये कम्पनियाँ कागजों में अरबपति व खरबपति हो गईं। इन कम्पनियों को भविष्य में शेयर बेचकर लाभ होने की आशा थी। उनके शेयर आसमान छू रहे थे। चूँकि शेयर की इन ऊँचाइयों का कोई आधार नहीं था अत: 2001 के आते जाते जब शेयर मार्केट क्रेश हुआ तो इन डॉटकाम कम्पनियों के शेयर भी धराशाही होने लगे। अब तक इन कम्पनियों की वेंचर पूँजी भी समाप्त हो गई थी। परिणाम स्वरूप सैकड़ों कम्पनियों में ताला लग गया। छटनी हुई एवं वे दीवालिया हो गईं। इससे बाजार में पूँजी की तरलता में कमी हो गई। एक गम्भीर मंदी शुरु हो गई व आर्थिक संकट आ गया।

इस आर्थिक संकट को दूर करने के लिए फेडरल बैंक ने अपनी ब्याज दरों को 6.5 प्रतिशत से घटाकर 1 प्रतिशत कर दिया। परिणाम स्वरूप निवेश बैंको व मार्टगेज बैंकों ने भी ब्याज दर गिरा दी। इन बैंकों ने अन्य वित्तीय संस्थाओं, हेज फण्डस् व बीमा कम्पनियों को कम ब्याज पर धन उपलब्ध कराया। इस प्रकार वित्तीय बाज़ार में पूँजी की प्रचुरता हो गई। इसी प्रचुरता ने सब प्राइम ऋण को जन्म दिया।

इसी समय अर्थात् 2001 से अमेरिका में हाउसिंग बूम भी आरम्भ हुआ। शेयरों के मूल्य में भारी गिरावट शुरु होने के बाद लोगों ने शेयरों से पूँजी निकालना आरम्भ कर दिया क्योंकि उसमें पूँजी लगाना बड़ा जोखिम भरा काम था। इसी समय मीडिया व सट्टेबाजों ने यह प्रचारित करना आरम्भ कर दिया कि रियल एस्टेट (सम्पदा) में पूँजी लगाना सबसे अधिक फायदेमंद है। एक आम मध्यवर्गीय अमेरिकी नागरिक एक घर का मालिक बनना शान की बात समझता है। फेडरल बैंक द्वारा ब्याज की दरों में कमी करने के कारण मकान खरीदने के लिए पूँजी भी आसानी से उपलब्ध होने लगी। रियल एस्टेट में खरीददार अधिक होने के कारण मकान की कीमतें भी भारी मात्रा में बढ़ने लगी।

इन पूरी परिस्थितियों का प्रभाव सब प्राइम ऋण पर पड़ा। एक ओर तो जनता का वह भाग भी ऋण लेने के लिए लालायित था जिसकी क्षमता साधारण रूप में ऋण वापस करने की नहीं थी दूसरी ओर सभी वित्तीय संस्थाओं को अपनी पूँजी के निस्तारण की जल्दी थी। प्राइम ऋण व आल्ट ए ऋण देने के बाद भी उनके पास भारी मात्रा में पूँजी अवशेष रहती थी। अत: वित्तीय संस्थाओं ने सब प्राइम ऋण देना आरम्भ कर दिया। यह ऋण देने के लिए प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ी कि बैंकों ने ऋणों का पैकेज बनाना आरम्भ कर दिया। सब प्राइम ऋणों को आकर्षक बनाने के लिए उनकी पैकेजिंग अन्य प्राइम ऋणों व आल्ट ए ऋणों के साथ की गई। इस प्रकार भारी मात्रा में सब प्राइम ऋण लोगों को दिया गया। 2004 से 2006 तक अमेरिका में दिये गये ऋणों में से 21 प्रतिशत सब प्राइम ऋण थे। 2006 में सब प्राइम मार्टगेज के अन्तर्गत 600 अरब डालर का ऋण दिया गया जो अमेरिका के कुल आवास ऋण का 20 प्रतिशत था।

भारी राष्ट्रीय ऋण एवं व्यापार घाटे के कारण अमेरिकी फेडरल बैंक ने रिजर्व की ब्याज दर 2004 से बढ़ानी आरम्भ कर दी। यह ब्याज दर 2004 से 2006 के बीच 17 बार बढ़ाई गई व 2006 के आते आते ब्याज दर 1 प्रतिशत से बढ़कर 5.25 प्रतिशत हो गई। इसके परिणाम स्वरूप अन्य बैंकों व वित्तीय संस्थाओं ने भी अपनी ब्याज दरें बढ़ा दीं। चूंकि सब प्राइम ऋण का ब्याज दर परिवर्तनीय थी अत: उसकी भी ब्याज दरें बढ़ने लगी। यह दरें इतनी तेजी से ऊपर आईं कि ऋण लेने वालों के लिए ऋण अदा करना असम्भव हो गया। अत: ऋण के बदले में गिरवी रखे गये उनके मकान ऋणदाताओं ने जब्त करके उनकी नीलामी आरम्भ कर दी। अचानक नीलामी में आये मकानों के कारण उनकी कीमत घटने लगी। जो लोग मकान की कीमत बढ़ने की आशा में मकान खरीद रहे थे, उन्होंने मकान खरीदना बन्द कर

दिया। ब्याज बढ़ने के कारण ऋण लेकर मकान खरीदने के लिए पूंजी जुटाना भी कठिन हो गया।

इन परिस्थितियों में नीलामी से मकान नहीं बिक पाये व सब प्राइम ऋण दाताओं की भारी पूँजी फंस गई। परिणाम स्वरूप ऐसे ऋण देने वाले बैंकों की आर्थिक स्थिति खराब होती गई तथा 100 से अधिक ऐसे ऋणदाताओं ने अपने को दीवालिया घोषित कर दिया। **इन बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं के बन्द होने के कारण अमेरिका का लगभग दस खरब डालर का मार्टगेज बाजार ढह गया। इसी को सब प्राइम संकट का नाम दिया गया क्योंकि यह संकट सब प्राइम ऋण के कारण आया। यह संकट अब इस सीमा तक पहुँच गया है कि अधिकतर अर्थशास्त्री इसके कारण अमेरिकी अर्थव्यवस्था को भयंकर रूप से संकटग्रस्त होने की घोषणा कर रहे हैं।**

सब प्राइम संकट अगस्त 2006 से आरम्भ हुआ। मार्च 2007 तक सब प्राइम ऋण लेने वाले अधिकतर डिफाल्टर होने लगे तथा उनकी सम्पत्ति ज़ब्त होकर नीलाम होने लगी। इससे ऋण लेने वाले व ऋणदाता दोनों की आर्थिक स्थिति खराब हो गई। इसका प्रभाव अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद पर भी पड़ा। अधिकतर लोग उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद के लिए भी ऋण पर निर्भर होते हैं। ऋण के लिए ब्याज के बढ़ने के कारण भी उनकी क्रय शक्ति कमज़ोर पड़ गई। इस प्रकार सब प्राइम संकट का प्रभाव उपभोक्ता बाज़ार पर भी पड़ा। अमेरिकी अर्थव्यवस्था अपने 13.7 ट्रिलियन डालर का 70 प्रतिशत उपभोक्ता सामग्रियों से प्राप्त करती है। आवास उद्योग में मंदी के कारण भी उपभोक्ता सामग्री की खरीद में कमी आई। इसके कारण पूरी अर्थव्यवस्था प्रभावित होने लगी।

अमेरिकी सब प्राइम संकट का प्रभाव ब्रिटेन पर भी पड़ा। वहाँ के एक मार्टगेज बैंक नार्दर्न रॉक की साख इतनी खराब हुई कि सितंबर 2007 में एक माह में लोगों ने बैंक से अपने 2 खरब डालर निकाल लिए। बैंक ऑफ इंग्लैण्ड ने इसी समय इस बैंक की सहायता की अन्यथा बैंक दीवालिया हो सकता था। चीन के निर्यात का सबसे बड़ा खरीददार अमेरिका है। इस निर्यात में अधिकांश उपभोक्ता वस्तुएं हैं। अमेरिकी बाज़ार में उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद में कमी आने के कारण चीन के निर्यात पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार इस संकट का प्रभाव चीनी अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा। इसके साथ-साथ भारत, कनाडा एवं आस्ट्रेलिया की अर्थव्यवस्थाएं भी अमेरिकी अर्थव्यवस्था से जुड़ी हुई हैं। अत: उन पर भी परोक्ष रूप से सब प्राइम संकट का प्रभाव पड़ना आवश्यक है।

सब प्राइम संकट से उबरने के लिए इंग्लैण्ड के केन्द्रीय बैंक ने 28 अरब डालर ब्रिटिश पूँजी बाज़ार में इंजेक्ट की। अमेरिका के फेडरेशन बैंक ने भी तीन बार यही किया एवं अपनी ब्याज दरें भी थोड़ी गिराई। किन्तु फिर भी सब प्राइम संकट को रोकने में कोई सफल नहीं हुआ। अब अधिकारी व बैंक यह समझ गये हैं कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था एक गहरे संकट के भँवर में फँस चुकी है। इस संकट का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सितम्बर 2007 में अमेरिका में 4000 कर्मचारियों की छटनी की गई। अभी जुलाई 2008 में 200 वर्ष पुराने विश्व के सर्वोत्तम बैंकों में से एक सिटी बैंक की हालत इतनी खराब हुई कि लगभग 18000 कर्मचारियों की छंटनी का निर्णय बैंक को लेना पड़ा। इस संकट से उबरने का रास्ता फिलहाल दिखाई नहीं देता।

सितम्बर 08 के दूसरे सप्ताह में अमेरिका की दो बड़ी वित्तीय संस्थाओं ने अपने को दिवालिया घोषित कर दिया है। ये संस्थाऐं हैं लीमैन ब्रदर्स तथा ए.आई.जी. (American International Group) मैरिल लिंच नाम की संस्था भी बैंक आफ अमेरिका को बेची जा रही है। भारत में भी टाटा ए.आई.जी तथा आई.सी.आई.सी.आई. के लिये परेशानी पैदा हो गई है। अमेरिका तथा भारत दोनों में ही लाखों रोज़गारों पर इसका प्रभाव पड़ सकता है। भारत में जो ऋण बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिये गये उनका एक बड़ा हिस्सा सब प्राइम ऋण है। एक अनुमान के अनुसार भारत में अब तक 41,000 करोड़ रुपये सब प्राइम ऋण के रूप में दिये जा चुके हैं। रिजर्व बैंक के भतपूर्व डिप्टी गवर्नर एस.एस. तारापुर के अनुसार भारत का सब प्राइम संकट कभी भी फूट सकता है। ❑

– 66/2 बी. स्टेनली रोड , इलाहाबाद

धीरज होने से दरिद्रता भी शोभा देती है। धुले हुए होने से जीर्ण वस्त्र भी अच्छे लगते हैं। घटिया भोजन भी गर्म होने से सुस्वादु लगता है और सुंदर स्वभाव के कारण कुरूपता भी शोभा देती है।

–चाणक्य नीति

ART OF LIVING FOR A SUPER YOU

❑ **S.K. Verma** IFS (Retd.)

Every one of us desires to be successful in life and enjoy prosperity, fame and well - being of the society and our motherland. Yet there are only a few who achieve their goals and many of us lag behind. It is our hope that twenty -first century would mean a radical new start in instilling respect and confidence within us, not merely for ourselves but more for the society and our motherland. Let us reassess our selves and learn the Art of Living to discover the real Super You. Let there be a people's movement to energize our people, youth and better citizens who are willing to match with positive action.

To positive thinkers 'Life' means walking into a world of Joy....to enjoy it and not adopting a pessimistic point of view. Swami Vivekanand once said" 50 percent of our life is lethargy, and ennui i.e. boredom, weariness and dissatisfaction resulting from inactivity or lack of interest; of the rest, 40 percent is pain; only 10 percent is Happiness and this too is for exceptionally fortunate." Swami Sunirmalananda once stated "Let us remember that life death are the obverse and reverse of the same coin. Then why are we born at all? We are born to become perfect and this perfection is within us. We have walked away due to attachment to the world. Our goal is to walk back."

Let us first of all accept a basic fact that our true 'Self ' is of pure potentiality and we all can align 'Self' with the power that manifests in everything that manifest. We must remember that we are not separate from the body of Universe and our 'inner self' is also an extended body of Universe. Our internal reference point is our own 'Spirit'. When one experiences his/her true nature,

one is closer to pure potentiality, which is free from fear, ego and social masks. There is no separation between him/her and the field of energy. Our Consciousness possesses attributes of pure knowledge, infinite silence, perfect balance, invincibility, simplicity and eternal bliss. We may think and assess our individual status and future potentiality and make changes consciously. Within each of us resides an unfailing guide/a wisdom for directions, which is 'Intuition'. When developed, trusted and followed, it is a powerful inner compass that unerringly points to us in the direction of success. It is important to understand the real intention and then to act in present, for a 'Super You' in future.

Let us realise that our Vision and Goals, Commitment, Self-Confidence and inner Strength reinforce the fulfilment of life. Remember 'Life' is a blank cheque, where you can put your singnature of hard work, sincerity and self-confidence for attainment of your vision and goals. 'Success' is the ability to fulfill your desires with effortless ease. It is defined as the continued expansion of happiness and the progressive realisation of worthy goals. Success is altributed to material wealth (most of us end up here), good health, energy, enthusiasm for life, fulfiling relationship, freedom, emotional and pschycological stability and a sense of well being and peace of mind. Even after attainment of these aspects we have to nurture seeds of divinity. Let us begin with first by asking ourselves a few searching questions. Why am I in this situation? Do I want instantaneous material prosperity or sustainable progress along with inner strength and happiness?

Let us do small things that together will make a bigger difference.

1. **Be optimistic with positive thoughts-**"You are, what your driving desire is. As your desire is, so is your will. As your will is, so is your deed. As is your deed is, so your destiny" *(Brihad Upanishad).* Don't blame others. Choose one trait or habit that you desire to change viz. negative thinking/ pessimism. For any choice ask yourself-What are my strengths? To what extent can I change and what changes can I anticipate? What are the consequences of choice? Will this choice bring fulfilment and happiness to me and also to those who are affected by this choice? Then ask for

guidance from within and be guided by its messages of comfort or discomfort. You will receive the right answer first when consciously you put your attention to your inner heart. Witness the results of choice each moment and bring them to conscious-awareness. Practice for one week and see the result.

2. Development dynamics shows challenges of the future i.e. productive work and a better quality of life. Learn from your past experience & transmute your "Karma" to a more desirable experience. Look for the seeds of opportunity & then tie the seed with 'Dharma' . 'Karma' applies to the action of "Conscious Choice-making" and not merely those who are guided by People and Circumstances. Set your daily routine and work schedule. Tackle one thing at a time. Set priorities and chart your progress as you make way through the list. Action without delay is the secret of efficiency. To seek the root cause of all your problems, ask "WHY" five times. If you make a mistake, correct it immediately., Seek the "Wisdom" of TEN people than the "Knowledge" of ONE.
3. **Stop acting your age. Change your mind-set.** Age is never a bar for any productive action plan. Broaden your horizons and never close doors to change and develop. Start action and behaviour the way you feel.
4. **Don't ever stop dreaming your dreams.** Keeping the child within alive enables you to enjoy every little pleasure. Every one of us can light the lamp of hope. Set your goals with confidence. Remain active and be ever willing to contribute your best output. Don't ever be reluctant to show your feelings when you're happy. When you are not, live with it.
5. **Don't every stop loving, don't ever stop believing.** Start loving the people around you, have faith on self and remain calm and composed.
6. **Cultivate playful attitude,** towards exercise viz. morning walking, jogging, swimming. Yoga, for mind and body in order to move with fluid flexibility towards a state of quite, humming vitality. These are enough to set aside fatigue. Learn relaxation techniques like meditation / a state of perfect silence.

7. We are obsessed with modern allopathic medicines which have after effects worse than the disease itself. Heal yourself through "Alternate medicine' namely Ayurveda, Homeopathy, Unani and last but not the least Naturopathy. Therapies like Acupressure, Acupuncture, Reiki, Feng Shui, modern 'gym' equipped with fitness equipment are also available. Also rely on your own body's self-healing capacity. Consume fresh and healthy vegetarian foods, plenty of green salad, fruits, non-fat foods. Replace Soya cream for dairy cream, fine to coarse (not fine or delicate in texture, structure, form) flour, fresh juice for aerated cold drinks, oily snacks for baked or roasted low-calorie snacks and creamed rich desserts to low-calorie desserts and absolute halt to junk foods. Learn to enjoy vegetarianism and adherence to basic principle of deferring between 2-3 hours between meals.
8. **Don't ever feel threatened by the future;** enjoy the present in life. Don't ever take the weight of the world on your shoulders. Don't ever feel that you are alone, there is always somebody there for you to reach out to. Learn to detegate responsibilities. Don't attempt to accomplish every work, as too many commitments will wear you out.
9. **Life is a chain of moments of enjoyment:** Search for knowledge, read more. Sit in a quite natural environment and enjoy every moment with it, without paying attention to your needs. Let us express and tell our elders, our family members and friends how much your love them.
10. From your life, remove the word "Someday" or "One of these days" I will do it. Whatever you have is the "present" moment which is "Special". Make the best use, as we don't know which moment will be the 'last'. Famous adage if 'Yesterday is a cancelled cheque. Tomorrow is a Promissory Note. Today is Cash. Spend it wisely'
11. In this fast changing competitive world, frustration amongst individuals is common. Changes due to science and technology have enchanted the entire humanity and one can not escape from its impact. Information technology has provided us an opportunity of living in a global village. We can learn ways and means to cope with the stress and a hidden fear of lagging behind. *Kaizen* is a Japanese

philosohy of life and not only for business, it can be used in home and family life. Firstly, it reduces clutter literally as well emotionally. Then it puts every thing in order and eliminates those factors that do not add value in your life. Kaizen, can be defined as "a means to means of continuous incremental change'. It makes you 'to be willing to continous positive change'. It teaches us to change through continuous incremental change. It veers an organization/ individual towards paying attention to small but significant details. Managers are encouraged to improve the efficiency of existing infrastructure instead of investing in more of the same. Primarily it pays attention to 3 basic steps-Pay attention to house-keeping, eliminate waste and standardize. It is close to JIT (Just in Time) and TQC (Total Quality Management).

12. **Wisdom emerges in the face of adversity.** Learn from any mistakes you might have made. Don't ever feel guilty about the past. What's done is done. Do not make excuses. Don't ever forget that you can achieve so may of the things you can imagine. It's not as hard as it seems. Don't ever be afraid to try to make things better. You might be surprised at the results.
13. **In this fast changing world, accept 'Change'.** There is a famous adage "Lead Change and Succeed, Accept Change and Survive, Reject Change and Die" by Jay Narda-Novell (a Networking company). Use your wisdom and 'common sense'. which are most uncommon these days.
14. Are you losing momentum and agility in life? Then follow the divine intervention of "Eco-psychology'. It is a holistic approach that emphasizes deeper conviction with life, where ecology is not just seen as something out there, but something we are part of and have a role to play in. John Swanson uses 'wilderness experiences to help people to get in touch with themselves. There is plenty of evidence that human nature and Mother Nature resonate to a common order that is physically, psychologically and spiritually wholesome-he explains. Reconnection with nature reawakens us to pleasure and beauty that feeds us in body, mind and soul. Respect Nature and create a Holiday Resort

within-a space in mind, a space in the heart, a space in the "Psyche', which would create 'niche' of your own, an oasis of peace, a lake of love and tranquility and a forest of beauty, which align your inner space with the bliss of Nature and Spirit. Helen Sterner Rice expressed "To go hand in with Nature, is to walk very close to God". Hence, spend some time with 'Nature' and for your hobbies. Focus your attention to pleasant thoughts, soothing music or visits to Nature Parks on weekends. Practice relaxation techniques.

15. Man has just discovered He has but one home-Now do you realize the importance of air and water...? 'Living ecologically' is the last option for nursing a green future. Start living with Nature. Establish your commitment to ecological security in your subconscious-mind and inner self. Emphasize on Value-Change for a shift from present Consumerist Spiral to a more environmentalism's basis will be suicidal & abortive. Think globally and Act locally. Follow Environmental ethics. Save forest, water, fossil fuels, power, and mother earth, Water is everybody's concern. For every child a tree.Even tiny wriggly creatures like earthworms (Eisena foetida) can provide 'Mrida Sanjivani, from its excreta to enhance soil.

Let me close with a poem

" Let there be respect for the earth, peace for its people, love in our lives, delight in the good and forgiveness for past wrongs. And from now on a new start." ❑

— "Muktayan" 60B, Amba Mata Scheme, Udaipur (Raj.)

Nothing contributes so much to tranquilize the mind as a steady purpose-a point on which the soul may fix its intellectual eye.

MEANING OF SPIRITUALITY

❑ **Suresh Chandra**

"We are not physical beings having a spiritual experience, but spiritual beings having a physical experience."

Spirituality lies beyond the material world of proof, beyond what can be measured or counted. It is made up of inner life, the realm of belief and mystery. Spiritual matters are those matters which are related to human kind's ultimate nature and purpose. These matters are concerned not only to material, biological organism but to the beings which have a unique relationship to that which is perceived to be beyond both time and the material world.

As such, the spirituality is contrasted with the material, the temporal and the worldly. The central defining characteristic of spirituality is its connection to a metaphysical reality, which may include an emotional experience of religious awe and reverence, or such states as sudden enlightenment or Nirvan. Spirituality perceives life as higher, more complex or more integrated than mere sensual life.

Some of life's most difficult questions are the spiritual ones. What is the purpose of life? Where does real meaning come from? What is of real value in our lives? If there truly is a God who loves us, how could there be so much suffering and unfairness in the world?

Part of our addiction to the busyness of life is an attempt to prevent ourselves from thinking about our mortality, the inevitable fact of our own death. But when we keep ourselves too busy to consider the purpose or our existence our lives cease to have any meaning. The real fact is that when we fully accept the reality of our mortality, then we begin to live. This is the point at which we begin to enter into and learn about the spiritual dimension of our life.

Spirituality and Religion-It is important to differentiate spirituality from religion. Religion is a set of dogmas, beliefs, rituals and worshipping some gods. Spirituality is realization; not doctrines or dogmas, rituals or books, temples or forms. Religion and spirituality are related and intertwined, but they are not the same. A person may experience spirituality without being a member of any specific religious affiliation, and even the most religious person may feel spiritually bereft.

Some people draw a line of distinction between 'spirituality in religion' and 'spirituality as opposed to religion'. The believers in 'spirituality in religion' follow a particular religion but have a faith more personal and less dogmatic. Despite their religious beliefs they are more open to new ideas and influences and do not follow the doctrines blindly. Their relation with the Deity is more personal than general.

Those who speak of 'spirituality as opposed to religion' do not follow a particular path. They believe in the existence of many ' spiritual paths' and refuse to indicate the best to follow, They emphasize the importance of finding one's own path rather than follow what others say.

Actually the true purpose of religion is to enhance spirituality through ritual and practice. This is accomplished when a person approaches his or her religion as a way to enter the great mystery and to become aware of the sacredness of all life. Religion can become a barrier to spirituality when it insists on narrow dogma and estranges its followers from a sense of connection with the Divine. Religion serves us best as a vehicle to nourish and develop our spirituality. It is possible, however to get too caught up in the vehicle, the religious practice, while losing sight of the destination, spirituality, which is communion with the Divine and compassion for all.

A distinction should be made between mere morality and ethics. Very often we identify spirituality with yogic healing, healthy dietary habits and moral preaching. But spirituality is much more than these things: it is about inner transformation. Maintaining a healthy body and observing good social behaviour are not the aims of spiritual life., though they are necessary preliminary requirements. The goal is much higher than mere concerns about a healthy body and mind. Spirituality is about

self-realization, the sacred relationship with the Supreme cause, the identification with the cosmic whole, the ultimate reality of one's existence. It is turning from outer experience to inner vision.

Spirituality and Science-Science takes as its basis empirical, repeatable observations of the natural world, and thus regards ideas that rely on supernatural forces for an explanation as beyond the purview of science. Hence for modern, academically oriented professionals, like physicians, engineers and technocrats, spirituality is a difficult subject. Science explores truth through reason-based conscious mind, while spirituality seeks truth revealed to the intuitive mind. Discovered truth and revealed truth are both truth, yet springing from two different states of mind. Putting faith in one and dicarding the other is a matter of choice.

No doubt the logical, analytical and rational approaches of the scientists have successfully brought a host of life-changing improvements in health care and technology. Our cultural tendencies based on science urge us to devalue mystery and belief, but the result is costly. We are left spiritually starved and out of balance.

We should not forget that spirituality is vital for our well being. It is the foundation of the values which are so dear to us and the seat of our trust and hope. Spirituality brings purpose and meaning to life, and as we develop in spirituality we grow in wisdom and love. We begin to experience a sense of awe a sense of connection to all of life, and a deep reverence for the Divine. Spirituality calls a human being to a life of trust and service. It involves a reverent attitude towards all things because it awakens us to a divine presence in all things.

Spirituality in Indian life-Dr. Radha Krishnan writes that the spiritual motive dominates life in India. Division of life in four Ashramas is an indicator to it. Vanprastha, the third Ashrama is meant to be a preparatory step towards final renunciation. In this Ashram the couple renounces worldly attachments and spends increasingly more time in spiritual practices. Sansyasa is the final Ashrama-the fourth and the final stage of life -marked by complete renunciation and total dedication to spiritual pursuits.

Actually the East is spiritual by nature while the West is inclined towards materialism. The East seeks the world beyond. The West wants to possess this mundance world. Swami Vivekanand said that the East tends towards the domain beyond the senses, while that of the West is turned to the seeking of the sense. The East is firmly rooted in eternal Truth. The West is familiar with the transient truths of the outer world. Consequently West has become skilful in action, liveliness and dynamism and, the East has become meditative, peace-loving and indifferent to life-activities.

The present urge of mankind is to synthesize these two different traits and to impart to the world at large a common, nobler and wider ideal. These two different types of virtues are complementary to each other. The body without soul is blind; the soul without body is lame. The body must be infused with the spirit of the soul, and the dynamics of the soul must manifest itself through the body. India is gradually moving up the ladder of prosperity and like West may fall into the trap of materialism. We must always remember that **a nation cannot afford to be materially rich and spiritually poor.** ❑

-Prerna Apartments, Flat No. 7, UGF
Gandhi Nagar, GHAZIABAD

The trouble with not having a goal is that you can spend your life running up and down the field and never scoring.

BHARAT THE SOIL OF Higher Human Values

Rev. Yatiswari Ramakrishna Priya Amba
President, Shri Sarada Ashram, Ulundurpet, Villururam Dist. Tamilnadu

Our sacred motherland is the birth place of philosophy, spirituality, ethics, sweetness, gentleness and love.....It is the land of renunciation - the highest ideal of life from the most ancient times to the modern times, are open to man. The mission of our nation is to conserve, to preserve and to accumulate the spiritual energy and pour forth this energy to the world.

But the highest ideal is apparently dead nowadays. Material civilisation of the foreign conquerors for the hundreds of years made our glorious culture to hide under the ashes. The political and social aspect of our nation was smashed to pieces. Still the life of our nation is pulsating. Our Bharat is still living. That is why at the time of Kargil war, thousands and thousands of young men, leaving their wives and children, came forward to fight and protect our nation's life. Were these people not nerved by lion's courage? Did they not have sympathy for poor? Have they not been fortifide by the eternal God? Could any other nations bear such shocks and still live today? 'No' reveals their history. Similar awakening was seen during the relief work of Orisa's storm. From the hundreds of ruins of foreign attacks and destructions, thousands of noble works and great acts arose. The life of our nation is not only a blessings to us, but also a great boon to the whole humanity. So a great task of building Renaissant India lies before every individual.

RELIGION - OUR NATION'S LIFE :

The unity and integrity of our Nation lies in our religion. Religion is the evolution of a beast into man and a man into God.

Thousands of *Tyagis* and crores of poor innocent people lived this meaningful life. This is embedded in each and every cell of our Indian blood even today.

In the fast developing scientific world, each and every individual is indebted to this society. He is a slave to his body, mind and intellect. A man must know about our glorious past and our life-current. If a man fails to equip himself with all these then he will not be able to render his duty properly to his society which has given life to him.

A son who doesn't realise the sufferings of his mother, the showers of love and affection of his mother, the magnanimous heart and the noble qualities possessed by his mother, could not perform his duties in a perfect manner. So when we want to contribute something to the society, we should know about our "Mother Bharat" and her greatness.

GURUGRIHA VASA

A man's life was divided into four Ashramas namely *Brahmacharya, Grihastha, Vanaprastha and Sannyas Ashramas.* The knowledge of the four ashrams, the aim of education, the duties he has to perform and his dharmic responsiblites were taught by Gurus in the *Brahmacharya* Ashrama before a man could start his life in the society. In Mahabharatha, Dronacharya clarifies Arjuna about the aim of Archery and his swadharma. Arjuna also clearly understands the kshatriya dharma at a very younger age itself. Each and every student was given his *Swadharma* and practical education based on his mental attitude and Gunas.

In those days, when the students in gurukula go out asking for biksha as "Ma Biksham Dehi" they came to know about the true situation and conditions of each and every family in society.

Today's society too has many schools and colleges. But the society doesn't have Gurus who can impart education which would manifest the potentiality in the students; Gurus are unable to refine the thoughts of the students; Students too don't become aware of their personal responsibility. Social awareness is totally absent in them. Only marks oriented education exists. Training the mind or moulding the character of the children is not taken care. Inspite of all these defects the nation's life current provides Personality Development Education in the family.

FAMILY - A TEACHER:

When a man enters *Grihastha* ashram from his *Brahmacharya* life, his mind gets refined further, Before marriage, only his

thoughts were given preference. But after entering into his Grihastha life he has to give preference to the thoughts of his wife and children. He has to share his thoughts and feelings with others. The fathers, mothers, Grand fathers and Grand mothers inculcated may habits in the children. This is how Shivaji became Chatrapati by the love of his mother. He was inspired to become a great hero in our nation's history by incidents from Mahabharat. Many patriots and great saints were created by our mothers. What our country lacks now are men in this real sense. **"Men, men-these are wanted; everything else will be ready; but strong, vigorous, believing young men, sincere to the back bone are wanted", said Swamiji.**

Today's mother does not know or rather get confused to narrate these stories. Instead the ghastly, ghostly cinemas and T.V. have occupied the Grahasta ashrama. This weakness is the death spring to our culture. It is highly shameful to note this weakness in our mothers.

SWADHARMA:

The deep rooted culture of our Nation is threatened by the foreign civilisation. Even at this critical juncture, our Nation has not lost its supremacy. India held its head high by its super computers. It made the worldly Nations and super powers to get surprised by its Atomic Researches. Without Indians, the scientific and computer world of America would stand still. America would become zero if Indians in these field return to our Bharat. The Dharma followed in any field-Science, Management, Politics, Technology with the correct mental attitude and correct way of doing is the swadharma.

Swadharma is the offering done in the Holy Yajna. The only base for swadharma is "love". Anyone who sees no difference among the people and loves his Nation the most, get immersed in their duty and responsibility and become a part and parcel of our Nation. Such people can alone offer their thoughts and deeds at the feet of our Mother Bharat. Man making mission of Swamiji is to create men whose swadharma is their life.

Once in Swami Vivekananda's life, when he was at a place called Hathras, the Assistant station Master Sarat Chandra Gupta asked Swamiji "Why do you look so sad? Swamiji replied," My son! I have a great mission to fulfill and I am in despair at the

smallness of my capacity. I have an order from my Guru to carry out this mission. It is nothing less than the regeneration of my Motherland. Spirituality has fallen to a low ebb. Starvation stalks the land. India must become dynamic and effect the conquest of the world through her spirituality". Sarat immediaterly offerd himself to Swamiji's great task. Swamiji's words could bring out the latent potentiality of any man. Thus Sarat became Swami Sadananda with sweet pure heart in the pages of R.K. math and mission.

SWAMIJI'S UNIVERSAL LOVE:

Swamiji's heart ached when he thought of the poor and the low in our country. They have no chance to escape, no way to climb. To think that we are moving away from our culture and our nations life current, swamiji felt very bad. His whole heart bleeded for the good of humanity. His words and feelings touched every hearer's heart, every nerves and muscles to think and act.

The embers of good feelings in Subash Chandra Bose, Sr. Nivedita, Subramania Bharathi were fanned to burn by Swamiji's words and love for the whole humanity. The whole India was enslaved under the Britishers and immersed in their civilisation, forgetting our tradition and culture. **"Whenever virtue subsides and vice prevails, I come down to help mankind"** declares Sri Krishna in Bhagavad Gita. **Whenever a Divine personality incarnates with a supreme mission in life a talented sage also makes his appearance on earth with a holy mission"** said Sw. Chidbhavananda. Sri Ramakrishna, the Divine Personality came in this world with a supreme mission in life. He found in Swami Vivekananda a talented sage who awoke the dormant spirit of India.

It was from his master Sri Ramakrishna that Vivekananda imbibed the spirit of divinity in every individual. We should not think ourselves to be low. Swamiji wanted the men to have three things-the heart to feel, the brain to conceive, the hand to work...If one is pure, if one is strong then that one man is equal to the whole world.

Swamiji did great wonders by his unfathomable, unbounded love he had on his guru. Before he reached the pinnacle of his glory even the lion-souled Swamiji suffered starvation, rebuffs

(Continued on page 85)

DO YOU INDULGE IN SELF PITY ?

❑ **Dr. P.V. Vaidyanathan**

Fifty four year old Veena Varma, a senior Manager in a bank, with children who are settled, and couple of grandchildren, is in the habit of constantly feeling sorry for herself. Whenever she comes to my clinic with her grandson, she looks sad, and soon starts talking about all her woes. She feels life has dealt out very bad cards for her, and that she has more problems that anyone else in the world. Her mere presence is enough to make the atmosphere heavy and she leaves one emotionally drained, every time you meet her.

Like Verma, many of us are guilty of indulging in self pity, consciously or otherwirse. We feel sorry for ourselves, feeling that others have a good life, while ours is laden with troubles and problems. Like her, we use every available meeting and opportunity to garner sympathy from others.

Like a Narcotic

Self pity is easily one of the lowliest of emotions. One must remember that in this world, everyone has their share of problems. What differs from one individual to another is the timing of the problem, the magnitude, and more importantly, our attitude to the problem.

Why do people indulge in self pity? For one, it gives us an opportunity to talk about ourselves. Secondly, we feel that by listing our set of problems to everyone, people will feel sorry for us, and will treat us with sympathy and respect. Also, for some strange reason, people who pity themselves, and are constantly complaining, actually feel happy doing this. Ironically, talking about all the bad things happening to them gives them some vague sense of satisfaction.

People who pity themselves often are responsible for making others feel miserable, and are usually not very welcome, Friends and relatives try to avoid such a person, saying it makes them

depressed even to talk to such a person. People also start to feel this person is never happy with anything, always keeps complaining, so why bother trying to cheer him/her up? Why bother to invite him/her to a party, or for a film or a social gathering? Soon, near and dear ones start to avoid such a person.

'Don't Worry, be Happy..'

Indulging in self pity and constantly complaining might get you some temporary sympathy, but in the long run, it will only bring more misery. It is a well known fact that unhappiness begets more unhappiness. When you get the feeling that others are avoiding you, or that you are not being invited to may a function, it is time to retrospect. Being open minded, realising that the grass is not always greener on the other side, and that many of our tensions and problems are not real, but our reaction to the ourside world, will go a long way in making us feel less sorry for ourselves. Remember, people have their own set of problems, and often don't have the time or energy to constantly give sympathy and emotional support.

One should try and get rid of this "My life is miserable, I do so much and no one appreciates my attitude." In this world, there will always be people who appear more fortunate and those less fortunate than us, at any given point. It is better to look at the less fortunate ones, and feel grateful, rather than at the more fortunate ones, and feel miserable.

Happiness is a state of mind, often depending on our outlook, mindset, approach and attitude. It has very little to do with things outside us, and always depends on how we decide to live life. One must try and not think too deeply about one's problems. Living in the present moment, and taking one day at a time, will help keep tensions and worries at bay. For example, consider a situation like this. Someone known to you calls you on the phone at 2 am in the night. Your first reaction is irritation and anger, at being woken up. You are ready to shout at the caller. You somehow hold your emotions in check, and talk. The caller tells you a wife/husband/father etc, has suffered a stroke/fall, and needs your help to take that person to the hospital. You immediately soften up, feel ashamed and compassionate, and not only talk nicely; you actually get up in the middle of the night to help your friend. This example clearly shows us how the event

may be anything (in this case, an apparently irritating past midnight phone call), but it is not the event which is good or bad; it's our reaction to the event.

Try a little cheerfulness, smile once in a while, and people will always like your company. Keep sulking and feeling miserable, and soon you might be all alone.

Also time and again, it has been seen that happiness or misery are qualities which have a magnetic property. If you are miserable, you will attract more misery. It you try and be happy, happiness will magnetically get drawn towards you.

Avoid this emotion of self pity. God has not decided to give all the worries and miseries in the world only to you; it just appears that way. And if God has really done it, then he has an ulterior motive, which will be revealed to you as time passes. Accept your misery as God's gift, and carry on in the best possible demeanour, and wait for the fruits of this tolerance and patience.

❒

(continued from page 82)

and indignities. After Padayatra, the saviour of our souls Swamiji shook the whole of America. He made lions out of sheep from Srinagar to Kanyakumari and created many saints. He attributed all his success to his Guru-"**Victory to the Guru".**

Swamiji wanted the young men to respond to the clarion call of our nation. The whole of life is expansion. Greater works are to be done to our nation. So let all of us **"Take up an ideal and give up our whole life to it".** The culture and tradition of our motherland awaits for enthusiastic, energetic, intellectual men of Faith to protect her. Only men who can sacrifice and give up anything whithout fear can awaken our nation. Living is more difficult than dying.

Swamiji thunders, "**No one step back; that is the idea. No bending the knee. Always stiffening the back bone and fight it out whatever comes".** Let's never look at people who scold or hoot from outside. Let's have swamiji with us always and rise sky-high to perfection. Only such exemplary men could be torch bearers and candle light to others. ❑

SCIENCE IN ANCIENT INDIA

❑ **Pankaj S. Joshi**

A few years ago, when I was visiting South Africa, in Durban, I had a meeting with the iron lady of African freedom struggle, Fatima Meer, who was an associate of Nelson Mandela during their epic freedom efforts. She asked me what I was doing, and I told her I study cosmology and astrophysics. She asked me if I had studied Indian comsmology, described so vividly in various Puranas, and other ancient Indian texts. She then told me how impressed she was with some of those ideas and descriptions and asked me if any of those concepts could be tested and described from a modern scientific perspective.

While I had no immediate answer for her, she certainly had a point well made and the questions she raised still stay in my mind. While it is exciting to believe that India had already, in her impressive past, discovered all the modern sciences available to us today, when you actually try to figure out exactly what all was discovered in India in terms of concrete scientific achievements, it is never an easy task. One is hampered by the lack of precise references, and only some general information is available.

Trying to figure out the exact scientific achievements of ancient India is not an easy task. However, lot of evidence is available to proclaim that we must have indeed made remarkable achievements in various sciences in our long and hoary past. Much study and effort is required to achieve important results.

My effort is to raise questions and hints, with some comments, which are of importance. That may spur us to intiate serious researches into this topic from various dimensions, leading to further details and data. Let me start with the questions and my answers :

Were great scientific discoveries made in ancient India?

From the information we have this looks possible. When we study ancient Indian literature such as the Vedas, Upanishads and epics, we are impressed by the enormous intellectual heights which have been achieved and expressed in these creations. The highest order of logic and the finest display of reasoning marked those who created these treasures of timeless wisdom and knowledge. What has survived now in ancient Indian literature, gives strong evidence of the great intuitive power and mental abilities of our ancestors.

I am trying to make a case for undertaking intensive researches in Ancient Indian Sciences and what we exactly achieved scienfifically in ancient India.

Did ancient India make great progress in mathematics?

Fortunately, this is one area where one can make some statements with definiteness.

Research has been done on the development of mathematics in ancient Indian texts and it is found that books such as Taittiriya Samhita, Shatapatha Brahmana and Yajur and Atharva-Veda, Rg-Veda plus additional Samhitas do contain many mathematical works and references. There was a need to determine the correct times for Vedic ceremonies and an accurate construction of altars was required, which apparently led to the development of astronomy and geometry.

Several topics discussed here include use of geometric shapes, including traingles, rectangles, squares, trapezia and circles. There have been discussions on equivalence through numbers and area. Equivalence led to the problem of squaring the circle and vice-versa, and early forms of Pythagoras theorem were also discussed.

Subsequently, works of many mathematicians such as Aryabhatta, Bramhagupta, Bhaskaracharya, Varahamihira, Shridhara etc. have become known and studied. These researchers studied many of the researchers mainly related to astronomy and geometry.

For example, the mathermatical verses of the Aryabhatta cover some of the following topics in arithmetic, such as method of inversion, various arithmetical operators which include the cube and cube roots, which probably originated in Aryabhata's work. The 'new' operations of square root also originated with his work,

it is believed. Again, in Algebra, he discussed topics such as: Formulae for finding the sum of several types of series: 'Rules for finding the number of terms of an arithmetical progression': Rule of three-improvement on Bakshali Manuscript; Rules for solving examples on interest-which led to the quadratic equation.

Indian scholars made vast contributions to the field of mathematical astronomy and as a result contributed mightily to the developments of arithmetic, algebra, trignometry and geometry. Perhaps most remarkable were developments in the fields of infinite series expansions of trignometric expressions and differential calculus.

Surpassing all these achievements was the development of decimal numeration and the place value system, which stand together as one of the foremost developments in the history of humankind.

Again, very large numbers have been named and used in ancient Indian literature. For example, we have prayutam (million, 10^6), arbuda (billion, 10^9), and shanku (trullion, 10^{13}), Likewise, it goes on to "Padma", "Mahapadma", "Kharva", "Nikharva", and "Parardha" which is 100,00,00,00,00,00,00,000, i.e. seventeen zeros after 1.

Could one name some other areas where we can say with confidence that ancient India did make considerable progress, and which is also vindicated by modern scientific discoveries?

Much progress was made in ancient India in the science of the mind. The Yoga traditions and related disciplines developed in ancient India are a clear evidence of that. All our knowledge is generated, perceived and created through mind and the senses, as they perceive Nature.

The modern scientists are certainly aware of our limitations towards understanding the universe through the means of sense perception, and the finite process of intellectual thinking. The subject of cosmology which deals with the origin and evolution of the universe, tells us vividly how small and insignificant we are when compared to the vastness of the cosmos.

There is apparently a limit to how far logical thinking and human intellect could go. The ancients must have realised, however, that unlike other instruments of knowledge, it is possible to extend the limits of mind enormously, and that the mind could

be the most poweful instrument of all. The vaious Yoga disciplines are the means to develop and enhance the capacity of the mind, and to take it to higher stages and planes. While strengthening the mind, the body is also healed, and made disease-fee.

The mind-body relationship, as espoused by the yoga philosophy, is being increasingly validated by today's medical science. While it is nobody's claim that ancient Indians knew everything in this regard, it goes beyond doubt that much can be learned by the modern man by means of a study of ancient Indian sciences.

There are also examples such as *Ayurveda, the ancient* Indian science of medicine, astronomy, *Jyotir Vigyan*-that is the science of celestial bodies. **There is good evidence that the art of ship-building and navigation were well developed in ancient India. The magnificent temples that stand today in India tell us about the architecture and civil engineering of those times, and of course about the fine arts of the day. It appears** that the earliest recorded use of copper ware in India has been around 3000 B.C. Apparently, the earliest documented observation of smelting of metals in India is by Greek historians in the 4th century B.C.

Why should one bother to study Ancient Indian Sciences in this modern age when science and technology are making amazing progress?

The important point to bear in mind is, there is absolutely no reason to think that today mankind has reached its highest peak of knowledge! It is plausible that there could have been higher advancements in the past, or will be in future. We must have an open mind both about our past and future. There could not be anything better than a careful study of ancient Indian traditions and sciences in its broadest sense, because that can provide us with important and beneficial hints for the future.

If we made great scientific discoveries in ancient India, then why so little is known about them? Why have we been so bad at documenting and preserving?

We have done rather poorly in documenting the discoveries, that were made in ancient India. Practically little evidence survives on what ancient Indian science had achieved. It is also possible that much literature, evidence and knowledge were destroyed during the invasions India faced in the past few centuries. It also

has to do with a certain attitude that we Indians have on life as a whole. For example, I was talking to an eminent Sanskrit scholar a few years ago about the possibility that ancient India had great scientific traditions, and if so, what we could do to find and preserve that. He told me that, of course, many such sciences have developed (and vanished) in ancient India. He said, this is an ongoing phenomenon, and it is like ash on fire. There are times when the fire is hidden under the ashes, but then a breeze just blows away the ashes, and the fire again picks up and shines bright! Similarly, he pointed out, such sciences emerge and vanish in time. He then added, "that which is eternal does not vanish and is never destroyed".

Do we have some specific examples of possible scientific advances in ancient India?

I mention below a few points which may be considered as such examples. Such cases again require further investigation.

The *Loha Stambha,* which is made of a non-rusting alloy, at the Kutub Minar site in Delhi gives an idea of the well developed level of metallurgy of those times. A well developed architectural knowledge has been used in several large temples. Knowledge of various acoustic effects is used again in construction of some temple halls and forts (e.g. Golconda Fort near Hyderabad).

Recently I had been to a fort near Ramtek at Nagpur, excavated in recent decades. While it was hot outside, some of the interiors were so designed as to preserve a pleasing and cool atmosphere, even in the absence of trees. Some principles of optics are seen to be in operation at the Virupaksha temple.

Finally, I would like to end with a word or caution. Even if we did make a good scientific progress in the past, we must save **ourselves from the danger of being complacent and self congratulatory. While it may be good to be proud of our heritage, we should certainly not overdo it.**

What is needed is serious attention and research into the various aspects of ancient India literature so that we could bring out some gems out of this ocean of Indian wisdom, and use it towards the greater benefit of mankind. ❑

BEST IS THE NEW WORST

❑ **Susan Jacoby**

Pity the poor word "elite," which simply means "the best" as an adjective and "the best of a group" as a noun. What was once an accolade has turned poisonous in American public life over the past 40 years, as both the left and the right have twisted it into a code word meaning "not one of us." But the newest and most ominous wrinkle in the denigration of all things elite is that the slur is being applied to knowledge itself.

Senator Hillary Clinton's use of the phrase "elite opinion" to dismiss the near unanimous opposition of economists to her proposal for a gas tax holiday was a landmark in the use of elite to attack expertise supposedly beyond the comprehension of average Americans.

One might as well say that there is no point in consulting musicians about music or ichthyologists about fish.

The assault on "elite" did not begin with politicians, although it does have political antecedents in sneers directed at "eggheads" during the anti Communist crusades of the 1950s. The broader cultural perversion of its meaning dates from the late 1960s, when the academic left pinned the label on faculty members who resisted the establishment of separate departments for what were then called "minority studies." In this case, two distinct faculty groups were tarred with elitism-those who wanted to incorporate black and women's studies into the core curriculum, and those who thought that blacks and women had produced nothing worthy of study. Instead of elitist, the former group should have been described as " inclusionary" and the latter as "bigoted."

The second stage of elite-bashing was conceived by the cultural and political right. Conservative intellectuals who rose to prominence during the Reagan administration managed the neat trick of reversing the '60s usage of "elite" by applying it as a slur to the left alone. "Elite," often rendered in the plural, became

synonymous with "limousine liberals" who opposed supposedly normative American values. That the right-wing intellectual establishment also constituted a powerful elite was somehow obscured.

"Elite" and "elitist" do not, in a dictionary sense, mean the same thing. An elitist is someone who does believe in government by an elite few-an anti-democratic philosophy that has nothing to do with elite achievement. But the terms have become so conflated that Americans have come to consider both elite and elitist synonyms for snobbish.

All the older forms of elite-bashing have now devolved into a kind of aggressive denial of the threat to American democracy posed by public ignorance.

During the past few months, I have received hundreds of e-mail messages calling me an elitist for drawing attention to America's knowledge deficit. One of the most memorable came from a man who objected to my citation of a statistic, from a 2006 National Geographic-Roper survey, indicating that nearly two-thirds of Americans age 18 to 24 cannot find Iraq on a map. "Why should I care whether my mechanic knows where Iraq is, as long as he knows how to fix my car?" the man asked.

But what could be more elitist than the idea that a mechanic cannot be expected to know the location of a country where thousands of Americans of his own generation are fighting and dying?

Another peculiar new use of "elitist" (often coupled with "Luddite") is its application to any caveats about the Internet as a source of knowledge. After listening to one of my lectures, a college student told me that it was elitist to express alarm that one in four Americans, according to the National Constitution Center, cannot name any First Amendment rights or that 62 percent cannot name the three branches of government. "You don't need to have that in your head," the student said, "because you can just look it up on the Web."

True, but how can an information-seeker know what to look for if he or she does not know that the Bill of Rights exists? There is no point-and-click formula for accumulating a body of knowledge needed to make sense of isolated facts.

It is past time to retire the sliming of elite knowledge and

education from public discourse. Do we want mediocre schools or the best education for our children? If we need an operation, do we want an ordinary surgeon or the best, most elite surgeon available?

America was never imagined as a democracy of dumbness. The Declaration of Independence and the Constitution were written by an elite group of leaders, and although their dream was limited to white men, it held the seeds of a future in which anyone might aspire to the highest-let us say it out loud, elite-level of achievement. ❑

Susan Jacoby is the author of "The Age of American Un-reason."

PRAYER TIMETABLE

A successful person works as per some time schedule. But to keep your mind, body and soul in fine tune, do you observe any time table for praying to the Almighty. If not, read it carefully:

- **MONDAY-** Wash day: Lord help me wash away all my selfishness and vanity, so I may serve you with perfect humility through the week ahead.
- **TUESDAY-** Ironing Day: Dear Lord, help me iron out all the wrinkles or prejudices I have collected through the years so that I may see the beauty in others.
- **WEDNESDAY-** Mending Day: O God, help me mend my ways so I will not set a bad example for others.
- **THURSDAY-** Cleaning Day: Lord, help me to dust out all the faults I have been hiding in the secret corners of my heart.
- **FRIDAY-** Shopping Day: O God, give me the grace to shop wisely so I may purchase eternal happiness for myself and all others in need of love.
- **SATURDAY-** Cooking Day: Help me, my Saviour, to brew a big kettle of brotherly love and serve it with clean, sweet bread of human kindness.
- **SUNDAY-** The Lord's Day: O God, I have prepared my house for you. I come into your presence to worship so I may spend the rest of my life in your presence.

From an e-mail forward.

DEVELOPING GOOD HABITS

The formula for happiness is simple: Be good, do good, and you will feel good. “Be good ” means be what you ought to be, and “do good ” means do what you ought to do. What is it that you ought be doing? Let your own conscience be your guide. When you do what you ought to be doing, you will feel good. In other words, you will be happy. When we act as we shouldn’t, we experience unhappiness. That is the main reason why it is important to eliminate bad habits.

If we are not careful, we can easily become ensnared by bad habits, for as Tryon Edwards wrote, “Any act often repeated soon forms a habit; and habit allowed, steadily gains in strength. At first it may be like a spider’s web, easily broken through, but if not resisted it soon binds us with chains of steel.”

Samuel Johnson expressed the same idea differently, **“The chains of habit are generally too weak to be felt, until they are too strong to be broken.”**

Still another author warns of the danger of bad habits creeping upon us by telling the following story: “You can’t kill a frog by dropping him into hot water. For when you do so, he reacts so quickly that he jumps out unharmed. But if you put him in cold water and gradually warm it until it is scalding hot, you have him cooked before he knows it. The intrusion of bad habits in our lives is very much like this.”

As a general rule, we stumble into bad habits. We have to remain ever watchful of our behaviour and take corrective action when it is called for.

Good habits are usually developed through conscious effort on our part. Once we form a habit, it takes over and forms us. The sum total of our habits solidify into our character, so they can be our best friends or our worst bosses.

Ben Franklin put it nicely when he wrote, “Your net worth to the world is usually determined by what remains after your bad habits are subtracted from your good ones.”

He also told us that, “It is easier to prevent bad habits than to break them.” Do you want to achieve success and avoid failure? **Success and failure are simply habits, and the good news is that good habits are just as difficult to break as bad ones.**

You don’t believe me? Would you stop brushing your teeth for one month if I were to pay you fifty dollars? Probably not. How come? Because good habits are just as difficult to break as bad ones!

Motivation is the ignition that gets us started on the road to success and good habits are the fuel that keeps us making progress.

Just as bad habits left unchecked snowball and lead to a downward spiral, good habits escalate and lead to an upward spiral. Each good habit we gain frees us to focus on bigger and better things. At the end of the day, we will experience the joy of being a self-made man or woman.

If you are a parent of young children, you have the opportunity to offer them this priceless gift, for as Lydia Sigourney wrote, “In early childhood you may lay the foundation of poverty or riches, industry or idleness, good or evil, by the habits to which you train your children. Teach them right habits then, and their future life is safe.” ❑

-Anonymous

Good Journal

Sir, I am an avid reader of your journal. The journal reflects high standards and lofty idealism. It is in tune with the spirit of a great organisation like Bharat Vikas Parishad which grew into an institution of national importance sustaining the legacy of Dr. Suraj Prakash Ji.

-Vimal Prasad *Patna (Bihar)*

सदस्यता फ़ार्म

मैं ज्ञान प्रभा का ग्राहक बनना चाहता हूँ :

GYAN PRABHA (Quarterly)

ज्ञान प्रभा (त्रैमासिक)

- ❑ एक वर्ष — रु. 100/-
- ❑ दो वर्ष — रु. 200/-
- ❑ आजीवन सदस्य — रु. 1500/-

स्पष्ट शब्दों में लिखें :-

नाम ____

पता ____

नगर ____________ पिन कोड ☐☐☐☐☐☐ राज्य ____________

टेलीफ़ोन नं ________________ मोबाईल ________________

तिथि ________________ हस्ताक्षर ________________

चैक नं./ ड्राफ्ट सं ________ दिनांक ________ रु. ________ का संलग्न है

(ड्राफ्ट/ चैक भारत विकास परिषद् दिल्ली को देय होगा)

(भुगतान के साथ इस कूपन को भी भेजें)

भारत विकास परिषद्

भारत विकास भवन (पावर हाउस के पीछे), पीतमपुरा, दिल्ली-110034

फ़ोन नं.: 011-27313051, 27316049

National President
RAVINDRA PAL SHARMA
Ph.: 022-28225252 (Mumbai)

☆

National Working President
ISHWAR DATT OJHA
Ph.: 011-25550082 (Delhi)

☆

National Secretary General & Chief Editor
VARINDER SABHARWAL
Ph.: 0181-2281214 (Jalandhar City)

☆

National Finance Secretary
HARISH JINDAL
Ph.: 0120-3297194 (Ghaziabad)

☆

National Secretary,
Website & Prakashan
ATAM DEV
Ph.: 011-27316049, 27313051 (Delhi)

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक : **भारत विकास परिषद्**
भारत विकास भवन
(पावर हाउस के पीछे),
पीतमपुरा, दिल्ली–110034
फ़ोन नं.: 011–27313051, 27316049
फ़ैक्स 011-27314515
E-mail: b_v_p@vsnl.net.
website: www.bvpindia.com

संस्करण : 2008

मुद्रक : **भावना प्रिंटर्स**
फ़ोन : 9871577322